भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

वर्ष- 2, अंक- 7-8, सितम्बर, 2015

राष्ट्रीय कायाकल्प

(हिन्दी-त्रैमासिक)

सामाजिक उत्पीड़न और अंतर्विद्रोह

हमारी शासन व्यवस्था का प्रतिफल

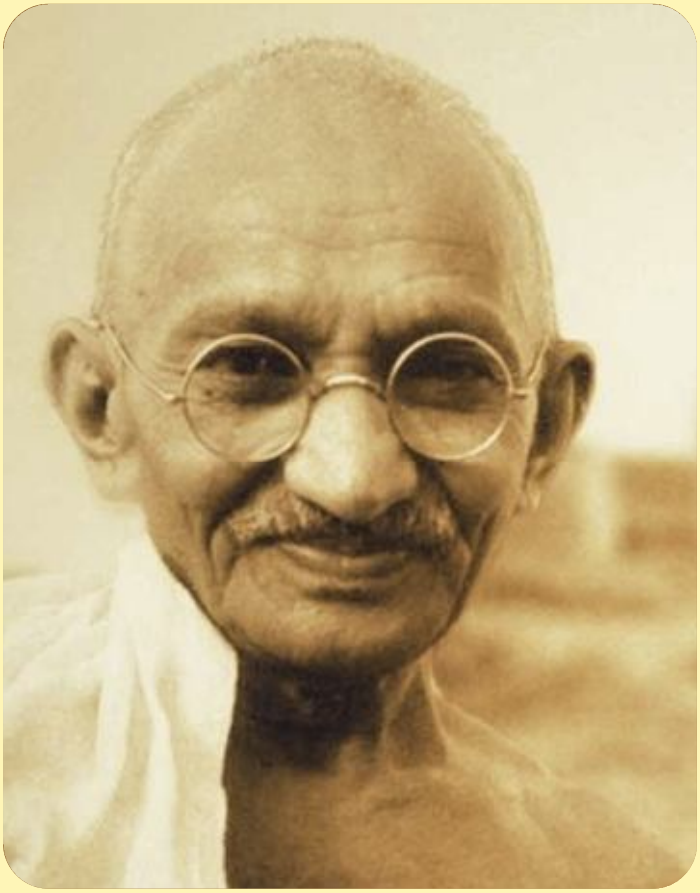

महात्मा गाँधी

आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। इस तरह, हर गाँव एक सर्वशक्ति पूर्ण गणतंत्र या पंचायत होगा। अतः हर गाँव को आत्म निर्भर होना होगा और अपना काम काज, यहाँ तक कि वह सारी दुनिया से भी अपनी रक्षा स्वयं करने को सक्षम रहना होगा, हर गाँव पूरी तरह प्रशिक्षित होगा और बाहरी किसी आक्रमण से मरते दम तक अपनी रक्षा को तैयार रहेगा। इस तरह, गाँव का हर व्यक्ति एक इकाई की तरह महत्त्वपूर्ण है। इसका मतलब यह नहीं है कि वह अपने पड़ोसियों या दुनिया से स्वेच्छा से दी हुई सहायता को नहीं स्वीकार करेगा। यह आपसी शक्तियों का स्वतंत्र और स्वेच्छापूर्वक आदान प्रदान होगा। ऐसा समाज अवश्यमेव उच्च संस्कृति सम्पन्न होगा जिसमें हर व्यक्ति यह जानता है कि वह क्या चाहता है। इसके ऊपर, वह यह भी जानता है कि किसी भी व्यक्ति को ऐसी चीज की चाहत नहीं रखनी चाहिए जिसे दूसरा समान श्रम करके नहीं प्राप्त कर सके।

(28.7.1946 के हरिजन में पंचायती राज विषय पर प्रकाशित लेख का अंश)

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

राष्ट्रीय कायाकल्प

वर्ष 2, अंक 7-8, सितम्बर 2015

संपादक
डा० त्रियुगी प्रसाद

संपादन सहयोगी
राजेश शुक्ल

सहायक संपादक
बिपेन्द्र

सहयोग राशि :
प्रति अंक रु. 30.00
व्यक्तिगत वार्षिक रु. 110.00
संस्थागत वार्षिक रु. 150.00

संपर्क :
173 बी, श्रीकृष्णपुरी
पटना 800001
टेलीफोन : 0612-2541276
email: rashtriyakayakalp@gmail.com
www.fcsgi.org

इस अंक में

संपादक की कलम से 2

भारत में सामाजिक अशांति, उत्पीड़न और अंतर्विद्रोह
वर्त्तमान शासन व्यवस्था का प्रतिफल 4

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है
कहाँ और किस स्थिति में है भारत की आत्मा? 10

सब कुछ टूटता–बिखरता हुआ 12

आई.आई.टी. की मूल भावना और वर्त्तमान परिदृश्य का विरोधाभास : हमारी शासन व्यवस्था की भूमिका : 14

स्वतंत्रता दिवस पर... 17

शासन व्यवस्था और सामाजिक अशांति 18

जहाँ बातें रुकी पड़ी हैं – एक प्रवाह चिंतन, कमरों से बाहर 21

भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था में समाजवाद असंभव 23

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान की वैचारिक रूपरेखा 25

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान
परिवर्त्तन क्यों अनिवार्य है? 26

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की मार्गदर्शिका 29

नव–सामन्तवाद बनाम भ्रष्टाचार 30

प्रश्नोत्तर के माध्यम से 31

स्वामित्वाधिकारी, संपादक, प्रकाशक तथा मुद्रक डा. त्रियुगी प्रसाद द्वारा 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001 से प्रकाशित एवं वातायन मीडिया एण्ड पब्लिकेशंस प्रा. लि., नीयर बोर्ड ऑफिस, फ्रेजर रोड, पटना, फोन : 0612-2222920 में मुद्रित

सम्पादक की कलम से...

बिहार जनसंख्या के आधार पर 243 विधानसभा क्षेत्रों में विभाजित है। इस चुनाव का उद्देश्य बिहार विधानसभा के लिए प्रत्येक विधान सभा क्षेत्र से उसके मतदाताओं द्वारा एक सदस्य चुना जाना है। संविधानिक प्रावधानों के अनुसार निर्वाचित सदस्यों के बहुमत का नेता राज्य का मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाता है जिस पर राज्य सरकार के गठन का यानी मंत्रिसमूह के चयन का उत्तरदायित्व है।

प्रस्तुत है ''राष्ट्रीय कायाकल्प'' का पाँचवा प्रकाशन और सातवें और आठवें अंकों का संयुक्तांक।

जब से हम इस अंक के प्रकाशन की प्रक्रिया से गुजर रहे थे, बिहार में अगली विधान सभा के चुनाव से सम्बंधित गतिविधियाँ परवान पर रही हैं – न सिर्फ बिहार की बल्कि केन्द्र के भी राजनीतिक कार्यक्रम और कार्यकलाप इस चुनाव को ध्यान में रख कर ही निर्धारित किए जा रहे हैं। इन राजनीतिक सरगर्मियों का विश्लेषण हमारे देश के लोकतंत्र और हमारी शासन व्यवस्था के स्वरूप के प्रति हमारी आँख खोलने वाली होगी।

बिहार जनसंख्या के आधार पर 243 विधानसभा क्षेत्रों में विभाजित है। इस चुनाव का उद्देश्य बिहार विधानसभा के लिए प्रत्येक विधान सभा क्षेत्र से उसके मतदाताओं द्वारा एक सदस्य चुना जाना है। संविधानिक प्रावधानों के अनुसार निर्वाचित सदस्यों के बहुमत का नेता राज्य का मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाता है जिस पर राज्य सरकार के गठन का यानी मंत्रिसमूह के चयन का उत्तरदायित्व है। देशव्यापी स्तर पर यही प्रक्रिया लोकसभा के चुनाव और केन्द्र सरकार के गठन पर भी लागू है। जो हम कहते हैं कि भारत एक लोकतंत्र है वास्तविक राजनीति में उसका सिर्फ यही अर्थ है कि हर पाँच वर्ष पर जनता को अपने विधान सभा क्षेत्र या लोकसभा क्षेत्र के लिए प्रतिनिधि चुनने के लिए मत देने का अधिकार है। इसके सिवा राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के गठन या उसके कार्यकलाप में जनता की कोई भागीदारी नहीं है। इन संविधानिक प्रावधानों के इतर वास्तविक राजनीति में विभिन्न राजनीतिक दल हैं जिनके गठन और संचालन में जनता की कोई भागीदारी या सहभागिता नहीं है लेकिन सत्ता को दौड़ में, सरकार के गठन और सरकार के संचालन में इनकी बड़ी अहमियत है। ये दल हर चुनाव क्षेत्र के लिए अपना उम्मीदवार मनोनीत करते हैं, उनकी जीत सुनिश्चित करने के लिए प्रचार–प्रसार और तरह के दावे और वायदे करते हैं, और मतदाता को लुभाने के लिए हर हथकंडा – जाति, धन, इत्यादि का उपयोग करने में कोई परहेज नहीं करते। चुनाव के बाद सरकार गठन में जनता अप्रासंगिक हो जाती है और संविधानेतर राजनीतिक दल की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

पूरी चुनाव प्रक्रिया में विभिन्न दलों, इकाइयों और विभिन्न रूपों में जो अपार धन खर्च होता है उसकी एक झाँकी निम्नलिखित है :

(1) अखबारों, पत्र–पत्रिकाओं, टी०वी०, रेडियो और अन्य संचार साधनों पर दिए गए विज्ञापन पर खर्च,
(2) रैलियों और अन्य सभाएं आयोजित करने में खर्च,
(3) राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव से सम्बंधित अपनी सांगठनिक बैठकें आयोजित करने में खर्च,
(4) प्रत्याशियों और उनके दलों द्वारा चुनाव क्षेत्र में होने वाला खर्च,
(5) चुनाव आयोग द्वारा चुनाव सम्पन्न कराने के लिए केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा होने वाला

सुरक्षा, विधि–व्यवस्था और चुनाव प्रक्रिया में खर्च, और

(6) चुनाव के चलते जन–जीवन ओर व्यापारिक गतिविधियों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव का आर्थिक आकलन।

चुनाव पर खर्च होने वाला यह अपार धन अंततः जनता की जेब से आता है जिसे जनता अपनी गरीबी और बदहाली से अदा करती है और इस पूरी चुनावी प्रक्रिया में जनता की भूमिका सिर्फ एक वोट बैंक के रूप में है जिसे विभिन्न दलों और प्रत्याशियों द्वारा विभिन्न युक्तियों से अन्ततोगत्वा जनता के खर्च पर जनता से ही भुनाया जाता है, भ्रष्टाचार और काला धन के रूप में। सरकार में, सरकार के गठन में, और सरकार के माध्यम से अपनी समस्याओं के समाधान में जनता की कोई प्रभावी भागीदारी नहीं है। यही है भारतीय लोकतंत्र का स्वरूप। और ऐसा इसलिए है कि भारत की शासन व्यवस्था ही विदूषित है। बिना भारत की वर्त्तमान शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था को बदले भारत में स्वस्थ और जीवंत लोकतंत्र आ ही नहीं सकता।

कमोबेश भारत क हर चुनाव में, लोकसभा के लिए या राज्यों की विधान सभाओं के लिए, इसी तरह का चुनावी माहौल, सरगर्मी और उस पर होने वाला खर्च रहता है। हम इससे इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि हम समझने लगे हैं कि हर लोकतंत्र में सम्भवतः ऐसा ही होता है। लेकिन ऐसा नहीं है। उदाहरण के तौर पर अमेरिका में राष्ट्रपति, जो विश्व के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति का राजनीतिक पद है, का चुनाव इतने शांतिपूर्ण और सुव्यवस्थित ढंग से सम्पन्न होता है कि हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते। पहली बात कि अमीरीकी राष्ट्रपति के चुनाव की तिथि अमेरिकी संविधान में ही प्रावधानित है, कोई चुनाव आयोग सुरक्षा या अन्य स्थितियों का जायजा लेने के बाद और कई बैठकें आयोजित करने के उपरान्त चुनावी तिथि नहीं निर्धारित होती। वहाँ चुनाव का दिन भी छुट्टी का दिन नहीं रहता, वह व्यापार, ऑफिस, स्कूल, कॉलेज, इत्यादि के लिए सामान्य कार्य दिवस रहता है। चुनावी बूथ पर किसी पुलिस की तैनाती नहीं रहती। और चुनाव का परिणाम उसी दिन चुनाव समाप्ति के कुछ घंटों के बाद हो जाता है। ऐसा इसलिए नहीं है कि अमेरिका का प्रशासन बहुत दक्ष हे या चुनावी प्रक्रिया में उच्च तकनीकी का प्रयोग होता है। इसका मूल कारण है कि अमेरिका की शासन व्यवस्था वास्तव में लोकतांत्रिक है, भारत की तरह शोषणात्मक और अनैतिकतापरक नहीं।

'राष्ट्रीय कायाकल्प' का प्रत्येक अंक भारतीय जीवन के किसी विकृत आयाम पर विशेष रूप से प्रकाश डालता है, उसकी विवेचना करता है, उसकी जड़ तक पहुँचने का प्रयास करता है और पाता हे उसकी जड़ में हमारी शासन व्यवस्था है। इसके प्रथम अंक में इस बात की विवेचना है कि भारत की सभी समस्याएं और विकृतियां इसकी शासन व्यवस्था से निकलती हैं। दूसरे अंक में भारत के लोकतंत्र की वास्तविकता और भ्रामकता पर चर्चा की गयी है। तीसरे अंक का विषय–वस्तु है कि भारत में जो भ्रष्टाचार की व्यापक और जटिल समस्या है, वह इस शासन व्यवस्था का अभिन्न अंग है। चौथे अंक में यह दिखलाया गया है कि भारत की गरीबी भारत की शासन व्यवस्था की ही देन है। 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का प्रस्तुत अंक इस विषय–वस्तु पर प्रकाश डालता है कि भारत में चारों तरफ जो सामाजिक अशांति, उत्पीड़न ओर इसके अच्छे–खासे भाग में जो अन्तर्विद्रोह की आग है वह हमारी शासन व्यव्स्था का ही प्रतिफल है। इस अंक में समाहित जो मुख्य लेख है वह इस तथ्य की विवेचना करता है। इसके अन्य आलेख भी प्रकारांतर से इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं।

आशा है कि यह अंक आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा। आपके मत–सम्मत का स्वागत है।

– त्रियुगी प्रसाद

पटना, 10 सितम्बर 2015

हम कहते हैं कि भारत एक लोकतंत्र है वास्तविक राजनीति में उसका सिर्फ यही अर्थ है कि हर पाँच वर्ष पर जनता को अपने विधान सभा क्षेत्र या लोकसभा क्षेत्र के लिए प्रतिनिधि चुनने के लिए मत देने का अधिकार है। इसके सिवा राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के गठन या उसके कार्यकलाप में जनता की कोई भागीदारी नहीं है। इन संविधानिक प्रावधानों के इतर वास्तविक राजनीति में विभिन्न राजनीतिक दल हैं जिनके गठन और संचालन में जनता की कोई भागीदारी या सहभागिता नहीं है लेकिन सत्ता को दौड़ में, सरकार के गठन और सरकार के संचालन में इनकी बड़ी अहमियत है। ये दल हर चुनाव क्षेत्र के लिए अपना उम्मीदवार मनोनीत करते हैं, उनकी जीत सुनिश्चित करने के लिए प्रचार–प्रसार और तरह के दावे और वायदे करते हैं, और मतदाता को लुभाने के लिए हर हथकंडा – जाति, धन, इत्यादि का उपयोग करने में कोई परहेज नहीं करते। चुनाव के बाद सरकार गठन में जनता अप्रासंगिक हो जाती है और संविधानेतर राजनीतिक दल की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

भारत में सामाजिक अशांति, उत्पीड़न और अंतर्विद्रोह

वर्त्तमान शासन व्यवस्था का प्रतिफल

असंतोष, भले ही वह सीमित और दबा हुआ हो, शोषण आधारित इस शासन व्यवस्था का स्वाभाविक गुण और परिणति है। इसी असंतोष के चलते भारत में स्वतंत्रता संघर्ष का जन्म हुआ जो विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ – हिंसक और अहिंसक दोनों रूपों में। 1889 में स्थापित 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के तत्त्वावधान में यह संघर्ष संस्थागत रूप से चला जिसमें भारतीय शासन व्यवस्था के शीर्ष स्तरों पर भारतीयों की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी हो, इस पर जोर दिया गया।

देश का वर्त्तमान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य अत्यन्त ही चिन्ताजनक है। राजनीति जिससे देश की दशा और दिशा सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है इतनी सत्ता केन्द्रित हो गयी है कि इसमें सिद्धांत और नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रह गया है। ऐसी राजनीति से देश की समस्याओं के समाधान और विकृतियों के निराकरण की कोई आशा करना व्यर्थ है। बहुत हद तक ये समस्याएं और विकृतियां राजनीति के वर्त्तमान कुत्सित स्वरूप के चलते ही है। दूसरी ओर, समाज में चारों ओर इतनी अशांति, असंतोष, दुर्व्यवस्था, पीड़ा और बदहाली व्याप्त है कि जनजीवन त्रस्त है। बेरोजगाारों की बढ़ती फौज और रोजगार की तलाश में गाँवों से पलायन करते लोग शहरों और दूर दराज के इलाकों में अमानवीय जीवन जीने को अभिशप्त हैं। गाँव, जहाँ भारत की आत्मा बसती थी, आज उजाड़ और जर्जर है। एक ओर जहाँ बढ़ती आबादी के साथ कुव्यवस्था और बेरोजगारी बढ़ रही है, दूसरी ओर लोग अनावश्यक रूप से हत्या, आत्महत्या, हादसा और समाज में व्याप्त हिंसा के शिकार हो रहे हैं। जो जी रहे हैं वे कई कारणों से और कई रूपों में वेदना और व्यथा की जिंदगी जी रहे हैं। देश का अच्छा खासा भाग अंतर्विद्रोह की अग्नि में जल–झुलस रहा है। जहाँ देश का पश्चिमी भाग आतंकवाद के साये में जी रहा है, वहीं पूर्वी भाग अलगाववादी तथा उग्रवादी ताकतों से जूझ रहा है। स्वतंत्र और गणतंत्र भारत में आम जनता की इसी दशा के मद्देनजर यह प्रश्न अप्रासंगिक नहीं है कि क्या भारत के इसी उभरते स्वरूप के लिए दो सौ सालों की गुलामी से निजात पाने के लिए देश की आजादी के लिए संघर्ष किया गया था और लोगों ने कुर्बानियां दीं थी? यह अहम प्रश्न है और इसका समुचित उत्तर हमारी आँख खोलने वाला होगा। इस उत्तर की

तलाश में हमें अपने आजादी के संघर्ष को गौर से देखना और विचार करना होगा।

सत्रहवीं सदी के प्रारंभ में ब्रिटिश औद्योगिक और वाणिज्यिक संस्था 'इस्ट इंडिया कम्पनी' ब्रिटिश सरकार की सहमति और तत्कालीन मुगल शासन की अनुमति से अपने व्यापारिक हितों को साधने के लिए भारत में आई। मुगल शासन के अवसान और देश में राजनीतिक अस्थिरता और अस्त–व्यस्तता का लाभ लेते हुए 'इस्ट इंडिया कम्पनी' ने 1757 ई० में भारत में अपना राज ही स्थापित कर लिया। भारत के 5000 वर्षों के लम्बे इतिहास में भारत में बाहर से कई लोग आए और कइयों ने यहाँ अपना राज भी स्थापित किया, भारत में बस गए और अभिन्न रूप से भारतीय हो गए। उनके और उनके राज्य का इतिहास भारत के इतिहास की निरंतरता में अविभेद्य रूप से जुड़ गया। 1757 ई० में भारत में स्थापित कम्पनी राज सर्वथा भिन्न था। इसके संस्थापक ब्रिटिश राज की छत्र–छाया में स्थापित ब्रिटेन के उद्योगपतियों ओर व्यवसायियों का एक समूह था जिसका एकमात्र उद्देश्य था इस समूह के लिए आर्थिक लाभ। जब इस समूह का राज स्थापित हो गया तो इस उद्देश्य की पूर्त्ति न सिर्फ व्यवसाय और व्यवसायिक नियमों के माध्यम से करने की वाध्यता थी, इसके लिए राज्य शक्ति का उपयोग करने की सामर्थ्य भी हासिल हो गयी। कम्पनी राज ने इस राज्य शक्ति का इस उद्देश्य के लिए भरपूर उपयोग किया। शोषण और लूट–खसोट की राजनीति कम्पनी राज में खुलकर की गयी।

दूसरा, भारत में रहने वाले कम्पनी के लोग सात समुंदर पार से भारत में रहने और बसने के लिए नहीं आए थे। भारत के शोषण और लूट–खसोट के

माध्यम से अपनी कम्पनी और अपने देश के लोगों के लाभ के लिए कम्पनी के द्वारा नियुक्त थे और नियुक्ति की अवधि के पश्चात् उन्हें अपने देश लौटना था। इस शोषण और लूट–खसोट का शिकार न सिर्फ यहाँ की आम जनता थी बल्कि यहाँ के स्थानीय राजे–रजवाड़े और नबाव भी इसके शिकार होने लगे और तद्जनति असंतोष ने 1857 ई० में विद्रोह को जन्म दिया। लेकिन उनमें आपसी वैमनस्य और एकता के अभाव और कम्पनी राज की बेहतर सांगठनिक और सैन्य शक्ति के कारण यह विद्रोह असफल हो गया। लेकिन कम्पनी राज के विरूद्ध भारत में फैले असंतोष के मद्देनजर ब्रिटेन की जनता और सरकार में यह संदेश गया कि कम्पनी राज भारत में दीर्घकाल तक कायम नहीं रह सकता। लेकिन शोषण और लूट खसोट से होने वाले लाभ से ब्रिटेन की जनता और सरकार वंचित नहीं होना चाह रही थी और चाहती थी कि शोषण और लूट तो होता रहे लेकिन शांतिपूर्ण ढंग से, सीमित असंतोष के साथ। इसके लिए यह आवश्यक था कि शोषण और लूट में भारत के लोग भी सहयोगी और सहभागी बने और इसे सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक था कि इसमें सम्बद्ध भारतीयों का नैतिक पतन भी सुनिश्चित हो। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए 1858 ई० में ब्रिटिश हुकूमत ने भारत का शासन सीधे अपने हाथ में ले लिया ओर भारत पर एक ऐसी शासन व्यवस्था थोप दी जो शोषण मे निपुण हो, व्यवस्था से सम्बद्ध भारतीयों का नैतिक अधोपतन सुनिश्चित करे और देश में शांति व्यवस्था कायम रखने में सक्षम हो। इसी शासन व्यवस्था के साथ भारत में कम्पनी राज की जगह ब्रिटिश राज कायम हो गया।

असंतोष, भले ही वह सीमित और दबा हुआ हो, शोषण आधारित इस शासन व्यवस्था का स्वाभाविक गुण और परिणति है। इसी असंतोष के चलते भारत में स्वतंत्रता संघर्ष का जन्म हुआ जो विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ – हिंसक और अहिंसक दोनों रूपों में। 1889 में स्थापित 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के तत्त्वावधान में यह संघर्ष संस्थागत रूप से चला जिसमें भारतीय शासन व्यवस्था के शीर्ष स्तरों पर भारतीयों की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी हो, इस पर जोर दिया

गया। बाद में, 'डोमिनियन स्टेटस', जिसमें इसी शासन व्यवस्था के तहत ब्रिटिश सरकार की छत्रछाया में भारतीय शासन व्यवस्था भारतीयों के द्वारा संचालित हो, इसकी मांग की गई। दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रवास के बाद 1915 ई० में जब महात्मा गाँधी भारत लौटे तो भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में सक्रिय रूप से शामिल होने के पूर्व पूरे भारत का भ्रमण किया, और भारत के लोगों की, विशेषतया गाँवों में रहने वाली जनता की, दुर्दशा और बदहाली से रूबरू हुए। इस कटु अनुभव के आधार पर गाँधीजी की निश्चित धारणा बनी कि देश की यह दुःस्थिति अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गई शासन व्यवस्था के चलते है। जब अपनी सूझबूझ और अनुपम दृष्टि के आधार पर गाँधी जी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक बने तो उन्होंने कई अवसरों पर और कई संदर्भों में यह घोषित किया था कि इस संग्राम का लक्ष्य यह कतई नहीं था कि अंग्रेज भारत से चले जाँय और उनकी जगह उसी व्यवस्था में भारत के लोग शासन संचालित करें, बल्कि यह था कि भारत को अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गई शासन व्यवस्था से मुक्ति मिले, अंग्रेज चाहे भारत में रहें या नहीं। गाँधी जी की अहिंसात्मक असहयोग की अनुपम रणनीति के चलते जब भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता मिली तो गाँधी जी की नजर में यह मात्र राजनीतिक स्वतंत्रता थी, जो स्वतंत्रता संग्राम के लक्ष्य को पाने के लिए एक आवश्यक शर्त थी, एक पड़ाव था। वास्तविक स्वतंत्रता तो तब मिलेगी जब भारत अंग्रेजों द्वारा थोपी गई शासन व्यवस्था से मुक्त हो जाय, जिसके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने पर भारत सक्षम हो गया था। यह मुक्ति हम समुचित संविधान बना कर पा सकते थे। लेकिन निवर्त्तमान ब्रिटिश सरकार की चाल, भारत के प्रभुत्वपूर्ण वर्गों के निहित स्वार्थ और महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायियों में उनके विचारों में अपूर्ण आस्था तथा संविधान निर्माण की अवधि में उनकी घोर उपेक्षा के फलस्वरूप भारतीय संविधान में स्वतंत्र भारत के लिए भी मूलतः वहीं शासन व्यवस्था अपना ली गयी जो औपनिवेशिक भारत में कार्यरत थी – वही शोषणात्मक ओर अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था।

देश का वर्त्तमान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य अत्यन्त ही चिन्ताजनक है। राजनीति जिससे देश की दशा और दिशा सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है इतनी सत्ता केन्द्रित हो गयी है कि इसमें सिद्धांत और नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रह गया है। ऐसी राजनीति से देश की समस्याओं के समाधान और विकृतियों के निराकरण की कोई आशा करना व्यर्थ है। बहुत हद तक ये समस्याएं और विकृतियां राजनीति के वर्त्तमान कुत्सित स्वरूप के चलते ही है। दूसरी ओर, समाज में चारों ओर इतनी अशांति, असंतोष, दुर्व्यवस्था, पीड़ा और बदहाली व्याप्त है कि जनजीवन त्रस्त है। बेरोजगाारों की बढ़ती फौज और रोजगार की तलाश में गाँवों से पलायन करते लोग शहरों और दूर दराज के इलाकों में अमानवीय जीवन जीने को अभिशप्त हैं। गाँव, जहाँ भारत की आत्मा बसती थी, आज उजाड़ और जर्जर है। एक ओर जहाँ बढ़ती आबादी के साथ कुव्यवस्था और बेरोजगारी बढ़ रही है, दूसरी ओर लोग अनावश्यक रूप से हत्या, आत्महत्या, हादसा और समाज में व्याप्त हिंसा के शिकार हो रहे हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की यह विडम्बना है कि एक युगपुरूष के प्रेरणादायी नेतृत्व में हम जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे, उस लक्ष्य को पाने में हम जब सक्षम हो गए थे, हमने उस लक्ष्य को ही नकार दिया। इससे न सिर्फ उस युग पुरूष के प्रति विश्वासघात हुआ और स्वतंत्रता सेनानियों और बलिदानियों को छला गया, हम ने स्वतंत्रता संग्राम को ही नकार दिया और देश के करोड़ों लोगों की आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया।

भारत की विभिन्न समस्याओं और विकृतियों को भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए और तभी हम इन बीमारियों की जड़ समझ पाएंगे और तभी हम उनका सही और प्रभावी निदान कर पाएंगे। अन्यथा हजार कोशिशों के बावजूद भी हमें निराशा और हताशा ही मिलेगी। पिछले छः दशकों से ज्यादा का अनुभव यही कहता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम वर्त्तमान शासन व्यवस्था, जो मूलतः वही है जो औपनिवेशिक या गुलाम भारत की शासन व्यवस्था थी, की विशिष्टताओं की गुणात्मक समीक्षा करें, जो निम्नलिखित है –

1. **शोषणात्मक** : यह शासन व्यवस्था शासितों के शोषण पर या ठेठ भाषा में कहें तो शासितों के व्यवस्थित लूट पर आधारित है, यह शासन व्यवस्था लूटतंत्र है। यह शोषण या लूट कई कारणों और कारकों से होता है, यथा एक बेहद खर्चीली शासन व्यवस्था को जनता पर थोपा जाना, शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा सरकार में आम जनता की अप्रभावी भागीदारी जिसके चलते शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी जनता को करों के अलावा महंगे निजी क्षेत्र की सेवाऐं लेने के

लिए मजबूर होना पड़ता है। भारत के वैसे लोग जो इस लूटतंत्र को नियंत्रित करते हैं, या किसी न किसी रूप से इससे जुड़े हुए हैं, या इसमें सहयोग करते हैं, उन्हें लूट का न्यूनाधिक लाभ मिलता है। लेकिन अंततः लूट का ये पैसा आम जनता की जेब से जाता है ओर इस तंत्र के वे शिकार होते हैं। अपनी गरीबी और बदहाली से उन्हें इस लूट का खामियाजा भुगतना पड़ता है।

2. **अनैतिकतापरक** : सात समुंदर पार से आए अंग्रेजों को भारत के व्यवस्थित लूट तंत्र में भारतीयों की भागीदारी, सहयोग और सहायता अनिवार्य थी। इस के लिए लूट का एक हिस्सा दलाली या सहयोग के बदले सम्बद्ध भारतीयों को दिया जाना आवश्यक था। हजारों साल की सभ्यता और संस्कृति की बिरासत लिए भारतीयों को लूट के इस अनैतिक कार्य में सहयोग करने के लिए उनका नैतिक अधोपतन सुनिश्चित करना अनिवार्य था। अतः भारत पर थोपी गयी शासन व्यवस्था शोषणात्मक के साथ–साथ अनैतिकता परक भी निरूपित की गयी। ऐसी शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार इसके एक अभिन्न अंग के रूप में व्याप्त है और यह किसी अपराध की श्रेणी में नहीं आता था। जिस तरह लुटेरों की कोई नैतिकता नहीं होती, इस शासन व्यवस्था में नैतिकता कोई मापदंड नहीं है।

3. **असंवेदनशीलताः** चूंकि इस शासन व्यवस्था के केन्द्र में हे शोषण, व्यक्ति या मानव नहीं, यह व्यवस्था मानवीय संवेदना के प्रति सर्वथा उदासीन है। व्यक्ति का उत्पीड़न और दुःख–दर्द इस व्यवस्था की चिन्ताओं की परिधि में कहीं नहीं है।

4. **बाँटो और राज करो** : यह शासन व्यवस्था जिस राजनीति पर आधारित है, उसका मूल मंत्र है बाँटो और राज करो (और लूटो)। राजनीति इस शासन व्यवस्था का अनुगामी है। जब तक यह शासन व्यवस्था रहेगी, इसकी अनुगामिनी राजनीति हर संभव विभाजन रेखा पर समाज को बाँटती रहेगी – धर्म के नाम पर, सम्प्रदाय के नाम पर, जाति के नाम पर, क्षेत्र के नाम पर। इस शासन व्यवस्था में समाज में कभी समरसता कायम नहीं हो सकती।

5. **असंतोष और अशांतिजनकः** चूँकि यह शासन व्यवस्था विभिन्न रूपों में लूट की व्यवस्था है, इसमें शांति और संतोष का साम्राज्य कभी भी कायम नहीं रह सकता। लूट के लाभ का लूट से सम्बद्ध विभिन्न वर्गों में कभी भी शांतिपूर्ण और संतोषजनक रूप से बँटवारा नहीं हो सकता, चाहे कोई भी फार्मूला या विधि अपनायी जाए। अतः इस शासन व्यवस्था में समाज में सतत अशांति और असंतोष अवश्यमेव रहेगा।

6. **अंतर्विद्रोह जनकः** इस शोषणात्मक शासन व्यवस्था में समाज के कुछ ऐसे वर्ग रहेंगे जो लूट तंत्र में अंतिम रूप से अपने को शोषित और शिकार महसूस करेंगे ओर इससे निस्तार पाने का कोई न्यायोचित रास्ता उन्हें नहीं सूझता। ऐसे वर्गों में तंत्र के प्रति विद्रोह की भावना स्फुरित और जागृत होना समझने लायक है। औपनिवेशिक काल में हमारे स्वतंत्रता–संग्राम का आविर्भाव भी इसी विद्रोह की भावना से हुआ था। यह तो देश और विश्व की एक निवति थी कि भारत के इस संग्राम को एक युग पुरूष के नेतृत्व का सौभाग्य मिला कि जिससे यह संग्राम अहिंसक ढंग से लड़ा गया। आम तौर से विद्रोह की यह भावना हिंसक रूप ही लेती है।

7. **केन्द्रीकृत** : तथाकथित संसदीय लोकतंत्र पर आधारित देश की वर्त्तमान शासन व्यवस्था निहायत केन्द्रीकृत है। कोई शासन व्यवस्था कितना केन्द्रीकृत, विकेन्द्रित या बहुकेन्द्रित है यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस शासन व्यवस्था में कितनी सरकारें कार्यरत हैं। इसको समझने के लिए हमें सरकार की परिभाषा स्पष्ट करनी होगी। लोकतांत्रिक शासन की उस सांगठनिक इकाई को सरकार कहा जाता है जो तीन मापदंडों को पूरा करता हो – एक, इसके निर्णयकर्त्ता या निर्णयकर्त्ता का समूह सम्बद्ध जनता द्वारा निर्वाचित हो; दूसरा, ये निर्वाचित निर्णयकर्त्ता सिर्फ अपने निर्वाचक के प्रति उत्तरदायी है और किसी के प्रति नहीं; और तीसरा, इन निर्णयकर्त्ताओं को अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन और प्रशासनिक शक्तियां उपलब्ध है, इनके लिए उन्हें किसी से माँगना नहीं है। इस परिभाषा के अनुसार भारत में सिर्फ 31 सरकारें कार्यरत हैं, 30 राज्य सरकारें और एक केन्द्र सरकार। शासन की और सभी इकाइयां, चाहे वह बोर्ड हो, प्राधिकार हो, आयोग हो, पंचायती राज हो, या अन्य कोई इकाई हो, सरकार नहीं है, क्योंकि ये सरकार होने के तीनों मापदंड पूरा नहीं

करते हैं। लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था का एक तुलनात्मक उदाहरण के तौर पर, जहाँ 40 करोड़ से भी कम आबादी वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में 92000 से भी ज्यादा सरकारें कार्यरत हैं, वहाँ 121 करोड़ आबादी वाले भारत में सिर्फ 31 सरकारें हैं। वैसे, आम तौर से लोग कहते हैं कि भारत में शासनाधिकार सरकार के तीन केन्द्रों पर ही केन्द्रित है, डीएम, सीएम और पीएम।

भारत में व्यापक रूप से फैली जो सामाजिक अशांति और उत्पीड़न है और देश का अच्छा खासा भाग जो अंतर्विद्रोह और उग्रवाद की आग से झुलस रहा है, भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था की उपर्युक्त विशिष्टताओं के आलोक में उनकी यदि समीक्षा की जाय तो हम स्पष्ट समझ सकते हैं कि ये सब हमारी शासन व्यवस्था का ही प्रतिफल है और जब तक भारत में यह शासन व्यवस्था रहेगी, हम सामाजिक अशांति और उत्पीड़न, अंतर्विद्रोह और उग्रवाद से निजात नहीं पा सकते। इनके विभिन्न कारकों की निम्नलिखित समीक्षा आँख खोलने वाली होगी।

1. **गरीबी** : सामाजिक अशांति और उत्पीड़न का बहुत बड़ा और मौलिक कारण समाज में व्याप्त गरीबी है। गरीबी के कारण कुपोषण, बीमारी और मृत्यु; गरीबी के कारण आत्महत्या; गरीबी के कारण अशिक्षा के अंधकार में रहने को अभिशप्त होना; गरीबी के कारण पारिवारिक कलह जो हत्या की हद तक पहुँच जाता है; गरीबी के कारण कमाऊ पूत को परिवार छोड़ कर बाहर जाना और इससे उत्पन्न गाँव में रहने वाले और बाहर जानेवाले दोनों के जीवन में कष्ट और संघर्ष; गरीबी के कारण सामाजिक कुकृत्यों यथा, चोरी, लूट, हत्या, आतंकवाद, अपहरण, आदि में लिप्त होना; इस तरह से सामाजिक अशांति और उत्पीड़न के बहुत से कारकों की जड़ में है गरीबी और भारत की गरीबी यहाँ की शोषणात्मक शासन व्यवस्था की देन है।

भारत में रहने वाले कम्पनी के लोग सात समुंदर पार से भारत में रहने और बसने के लिए नहीं आए थे। भारत के शोषण और लूट–खसोट के माध्यम से अपनी कम्पनी और अपने देश के लोगों के लाभ के लिए कम्पनी के द्वारा नियुक्त थे और नियुक्ति की अवधि के पश्चात् उन्हें अपने देश लौटना था। इस शोषण और लूट–खसोट का शिकार न सिर्फ यहाँ की आम जनता थी बल्कि यहाँ के स्थानीय राजे–रजवाड़े और नबाव भी इसके शिकार होने लगे और तद्जनति असंतोष ने 1857 ई० में विद्रोह को जन्म दिया। लेकिन उनमें आपसी वैमनस्य और एकता के अभाव और कम्पनी राज की बेहतर सांगठनिक और सैन्य शक्ति के कारण यह विद्रोह असफल हो गया। लेकिन कम्पनी राज के विरूद्ध भारत में फैले असंतोष के मद्देनजर ब्रिटेन की जनता और सरकार में यह संदेश गया कि कम्पनी राज भारत में दीर्घकाल तक कायम नहीं रह सकता। लेकिन शोषण और लूट खसोट से होने वाले लाभ से ब्रिटेन की जनता–सरकार वंचित नहीं होना चाह रही थी और चाहती थी कि शोषण और लूट तो होता रहे।

2. **अपहरण, हत्या, बलात्कार ओर मानवीय क्रूरता के अन्य कृत्य** : इस तरह के कृत्य एक सभ्य समाज में जितना असमान्य होना चाहिए उससे कहीं ज्यादा भारतीय समाज में व्याप्त है। इसमें भी हमारी शासन व्यवस्था की काफी भूमिका है। जो शासन व्यवस्था स्वयं लूट जैसे अनैतिकता पर आधारित है, उसमें किसी कृत्य की अनैतिकता आसाधारण नहीं रहती। दूसरे, जैसा पहले कहा गया है, हमारी शासन व्यवस्था मानवीय वेदनाओं के प्रति स्वभावतः असंवेदनशील है।

3. **बंद, हड़ताल, प्रदर्शन, रैली, इत्यादि**ः हमारी शासन व्यवस्था में समाज में अशांति और दैनिक जीवन को अस्त व्यस्त कर देने वाली घटनाएं सामान्य हो गयी हैं जिनसे लोगों का जीवन कष्टमय और अशांत होता है। ये घटनाएं भी शासन व्यवस्था जनित है। शोषण या लूट आधारित इस शासन व्यवस्था में लूट में भागीदारी से उत्पन्न समाज के विभिन्न वर्गों में उपजा असंतोष इन घटनाओं को जन्म देता है।

4. **आरक्षण** : भारत में अनुसूचित जातियों, जनजातियों और सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों को शिक्षा, सरकारी रिक्तियों, विधानसभाओं, लोकसभा और शासकीय प्रतिनिधि सभाओं में आरक्षण का अधिकार संविधानिक प्रावधानों के तहत दिया गया है। उद्देश्य तो यह है कि ऐसे वर्गों को, जो भारत की सामाजिक–ऐतिहासिक प्रक्रिया में दलित, दबे–कुचले और पिछड़े रह

गए हैं, उन्हें ऊपर लाया जाय, मुख्य धारा में लाया जाये। लेकिन हमारी शासन व्यवस्था की विकृति के चलते इस प्रावधान का उद्देश्य भी विकृत हो गया है। हमारी शासन व्यवस्था लूट तंत्र है, आरक्षण लूट में भागीदारी की वरीयता ओर अवसर के रूप में देखा जाता है। एक तो इससे आरक्षण न सिर्फ अपने मूल उद्देश्य से भटक गया है और इसका पूरा लाभ वंचित समाज को नहीं मिल रहा है, और दूसरे समाज के अन्य वर्गों में इसके प्रति क्षोभ की भावना भी जागृत होती है। इससे समाज की विभाजन रेखाएं उग्र होती हैं ओर सामाजिक समरसता कुप्रभावित होती है।

5. **सड़क, रेल, भगदड़ और अन्य दुर्घटनाएं, डूबने से मौतें और मानवीय त्रासदी की अन्य घटनाएं** – भारत में आए दिन होने वाली मानवीय त्रासदी की ये दुर्घटनाएं बहुत सामान्य हैं। ऐसे तो कोई भी, कहीं भी दुर्घटना दैवी तत्त्व और मानवीय भूल दोनों के संयोग से होती है। लेकिन भारत में होने वाली दुर्घटनाओं की समीक्षा की जाय तो मानवीय तत्त्व ज्यादा प्रभावी रहता है। जैसे सड़क दुर्घटना में सड़कों का रख–रखाव, यातायात के नियमों का पालन नहीं करना आदि की ज्यादा भूमिका रहती है। डूबने और भगदड़ से मौतें एहतियाती कदमों के न लेने से ज्यादा होती हैं। इन सब कारणों का विश्लेषण किया जाय तो पाएंगे कि ऐसी दुर्घटनाएं शासन के अभाव या अपर्याप्त शासन के चलते है। शासन का यह अभाव या अपर्याप्तता वर्त्तमान केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था की विशिष्टता है। ऐसी शासन व्यवस्था में मानवीय त्रासदी की ऐसी घटनाओं को झेलने के लिए भारत सदा अभिशप्त रहेगा।

6. **भ्रष्टाचार जनित सामाजिक और मानवीय उत्पीड़न** : भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था भ्रष्टाचार पर आधारित है और भ्रष्टाचार को जन्म देती है। शासन व्यवस्था की शोषणात्मकता ओर उससे उत्पन्न भारत की गरीबी की चर्चा तो की जा चुकी है। लेकिन भ्रष्टाचार से उत्पन्न सामाजिक और मानवीय उत्पीड़न पर हमारा कम ध्यान जाता है। भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्तियों का मानसिक, मनौवैज्ञानिक, पारिवारिक और सामाजिक उत्पीड़न दयनीय है। मध्यप्रदेश में केन्द्रित व्यापमं भ्रष्टाचार घोटाले में अब तक 46 व्यक्तियों ने आत्महत्या कर ली है। कौन है इस उत्पीड़न का उत्तरदायी? बहुत हद तक हमारी शासन व्यवस्था दोषी है जो भ्रष्टाचार को जन्म देती है।

7. **अन्तर्विद्रोह, अलगाववाद और उग्रवादः** जैसा कि पहले इंगित किया गया है, भारत की शासन व्यवस्था देश में अंतर्विद्रोह, अलगाववाद और उग्रवाद को जन्म देती है। फलस्वरूप देश का अच्छा खासा भाग अन्तर्विद्रोह, अलगाववाद और उग्रवाद से ग्रस्त है। इससे न सिर्फ सरकार की ऊर्जा और संसाधन इन से निपटने में व्यय हो जाता है, बल्कि इनसे कुप्रभावित आम और निर्दोष लोग भी होते हैं। जब तक यह शासन व्यवस्था रहेगी, देश इस समस्या से कभी मुक्त नहीं हो सकता।

इस तरह इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होगा कि हमारे सामाजिक जीवन में जो अशांति है, उत्पीड़न है और देश के अच्छे–खासे भाग में अंतर्विद्रोह और उग्रवाद है, वह हमारी शासन व्यवस्था की विशिष्टताएं और स्वाभाविक अवगुण के चलते है। और जब तक यह शासन व्यवस्था रहेगी, हमारा देश सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की इन विकृतियों से कभी मुक्त नहीं हो सकता, चाहे जो भी और जितने भी शासकीय और प्रशासकीय प्रयास किए जाएं।

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है

कहाँ और किस स्थिति में है भारत की आत्मा ?

''भारत की आत्मा गाँवों में बसती है'', ''भारत एक कृषि प्रधान देश है'' और ''उत्तम खेती, मध्यम बाण'' की परम्परा वाले देश में गाँव, कृषि और किसान की आज जो दुर्दशा है उस पर ज़ार ज़ार रोना आना चाहिए, यदि हम पूर्णतः संवेदन विहीन नहीं हो गए हों तो। लेकिन रोना किसी समस्या का समाधान नहीं है, हाँ, यदि रोने से उस समस्या के समाधान की प्रेरणा मिलती है तो उस रोने का कुछ अर्थ है।

समस्या के समाधान की दिशा का पहला और आवश्यक कदम है उस समस्या को समझना। इस समस्या को समझने के लिए हमें भारत के इतिहास पर गौर करना अनिवार्य है। अपने 5000 वर्षों के इतिहास में अठाहरवीं सदी के मध्य तक भारत न सिर्फ सभ्यता और संस्कृति के शिखर पर, बल्कि समृद्धि के शीर्ष पर भी या उसके आस पास रहा है। इतिहास की लम्बी अवधि तक भारत विश्व का सबसे धनी देश रहा था, और कुछ अवधि तक चीन के बाद दूसरा सबसे धनी देश रहा। औरंगजेब के शासन के अन्त तक भारत विश्व की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था थी। भारत की गरीबी का इतिहास प्रारंभ हुआ जब 1757 ई० के प्लासी युद्ध के बाद भारत में अंग्रेजों का कम्पनी राज स्थापित हुआ और इसका दारिद्रीकरण 1858 ई० में विधिवत ब्रिटिश राज स्थापित होने के बाद भी बदस्तुर जारी रहा। विश्व के एक आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अन्त में 1950 में भारत के पास वैश्विक धन का मात्र 3% धन था और इसकी अर्थव्यवस्था विश्व के देशों में 46वें स्थान पर थी। लेकिन आश्चर्य की बात है कि भारत की स्वतंत्रता और गणतंत्रता के बाद भी इसके दारिद्रीकरण की प्रक्रिया रूकी नहीं है, लगातार चलती ही गयी है। एक ताजा आर्थिक वैश्विक सर्वेक्षण बताता है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत अभी 130 वें पायदान पर है और इसके पास वैश्विक धन का मात्र 1.3% धन ही है। स्पष्ट है कि यदि 200 वर्षों की गुलामी से आजाद होकर भी दारिद्रीकरण की पुरानी प्रक्रिया बदस्तूर चलती रही तो कुछ है जिसके चलते यह प्रक्रिया हो रही है और जो आजादी के बाद भी नहीं बदली। वह है हमारी शासन व्यवस्था। भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था मूलतः वही है जो औपनिवेशिक भारत में थी। और याद कीजिए कि अपने दक्षिण अफ्रिका प्रवास से स्वदेश लौटने पर जब महात्मा गाँधी ने भारत की दशा देखने और समझने के लिए भारत यात्रा की और देश की, और विशेषकर गाँवों की, बदहाली से रूबरू हुए तो उन्होंने स्पष्ट कहा था कि देश

5000 वर्षों के इतिहास में अठाहरवीं सदी के मध्य तक भारत न सिर्फ सभ्यता और संस्कृति के शिखर पर, बल्कि समृद्धि के शीर्ष पर भी या उसके आस पास रहा है। इतिहास की लम्बी अवधि तक भारत विश्व का सबसे धनी देश रहा था, और कुछ अवधि तक चीन के बाद दूसरा सबसे धनी देश रहा। औरंगजेब के शासन के अन्त तक भारत विश्व की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था थी।

की यह दुर्दशा इस पर थोपी गई शासन व्यवस्था के चलते है। इसीलिए महात्मा गाँधी जब देश के स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े और इसके नायक बने तो उन्होंने स्पष्ट कहा था, और कई अवसरों पर कहा था, कि स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य इस शासन व्यवस्था को हटाना है, अंग्रेज चाहें रहें या जायें। लेकिन देश का दुर्भाग्य रहा कि अंग्रेज तो 15 अगस्त 1947 को भारत से चले गए लेकिन उनकी शासन व्यवस्था यहीं रह गई। बल्कि 26 जनवरी 1950 को लागू अपने संविधान में स्वतंत्र भारत में भी मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना कर न सिर्फ स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के प्रति विश्वासघात किया गया बल्कि इसके लक्ष्य को भुलाकर इस संग्राम को ही नकार दिया गया। और किसानों की दुर्दशा की गाथा जो 250 वर्षों पूर्व भारत में अग्रेजी राज स्थापित होने के साथ प्रारंभ हुई वह आज भी निर्बाध जारी है।

इसे समझने के लिए किसानों की दुर्दशा और भारत की शासन व्यवस्था का अन्तर्सम्बंध समझना आवश्यक है। जैसा कि हम कह चुके हैं कि भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था तात्त्विक रूप से वही है जो औपनिवेशिक भारत में थी। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था एक साधन सम्पन्न उपनिवेश को व्यवस्थित रूप से शोषित करने के लिए अभिकल्पित ओर संरचित थी। उच्च सभ्यता–संस्कृति सम्पन्न भारत में ऐसी व्यवस्था, जो शासित को शोषित करती है, को दीर्घकालिक बनाए रखने के लिए यह भी आवश्यक था कि यह शासितों का नैतिक अधोपतन भी सुनिश्चित करे। अतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था शोषणात्मक के साथ–साथ अनैतिकता परक भी थी। इसका एक उदाहरण तो यह है कि यह शासन व्यवस्था भ्रष्टाचार की जनक और पोषक थी, अतः भ्रष्टाचार ऐसी शासन व्यवस्था का अभिन्न अंग था। ऐसी शासन व्यवस्था में शोषण, या कहें तो भारत के धन की व्यवस्थित लूट, का अंतिम लाभुक तो शासक वर्ग अंग्रेज लोग थे लेकिन इस लूट में सहयोगी भारतीयों को भी दलाली के रूप में, एक बेहद खर्चीली शासन व्यवस्था में वेतन के माध्यम से, भ्रष्टाचार के अवसर के माध्यम से या अन्य अनैतिक माध्यमों से लूट की भागीदारी मिलती थी। अंग्रेजों को इस लूट का शुद्ध लाभ और सहयोगी भारतीयों को इसका लाभांश दोनों भारत की जनता के निर्लज्ज शोषण या खून चूसने से आता था। और इस शोषण का अंतिम रूप से गाँवों के लोग ओर किसान शिकार थे। औपनिवेशिक काल में उनकी स्थिति बद से बदतर होती गयी। इस काल में शस्य श्यामला भारत में अनेकों भयानक दुर्भिक्ष पड़े और लाखों लोग भूख से बेहाल काल के गाल में समा गए। जैसा पहले कहा गया स्वतंत्र और गणतंत्र भारत में तत्त्वतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था अपना लेने के फलस्वरूप भारत में दारिद्रीकरण की प्रक्रिया अनवरत जारी है, जिसका कुप्रभाव अंतिम रूप से किसान और गाँवों के लोग पर पड़ रहा है। आश्चर्य है कि जहाँ खाद्यान्न और अन्य कृषि उत्पादन की माँग और खपत देश में कभी कम नहीं होने वाली है वहाँ कृषि लाभकारी व्यवसाय नहीं रह गयी है। किसान मजदूर बन रहें हैं ओर गाँवों में रोजगार के रास्ते बंद हो रहे हैं। गाँवों से शहरों की झुग्गी झोपड़ियों में पलायन हो रहा है, गाँव बीरान हो रहे हैं और किसान मर रहे हैं और यह सब इसलिए कि औपनिवेशिक भारत पर थोपी गयी शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था तत्त्वतः स्वतंत्र भारत में भी अपना ली गयी। और जब तक यह व्यवस्था रहेगी, कोई भी नेता और कोइ भी सरकार किसानों की हालत सुधारने में अक्षम रहेगा। चूँकि गाँवों के लोग और किसान एक बड़ा वोट बैंक है, इन्हें रिझाने के लिए मनरेगा, खाद्य सुरक्षा और अन्य लोक लुभावन योजनाएं आती रहेंगी और किसान आत्महत्या के लिए मजबूर होते रहेंगे।

अतः देश की चीखती पुकार है – शासन व्यवस्था परिवर्त्तन। 1908 में लिखित हिंद स्वराज में महात्मा गाँधी ने इस चेतावनी को इंगित किया था कि यदि अंग्रेज भारत से चले गए और इसी शासन व्यवस्था को रखते हुए इसके संचालक भारतीय हो गए तो देश की दुर्दशा सुनिश्चित है। अब सर से पानी इतना ऊपर हो गया है कि इस चेतावनी की ओर मुखातिब होना अनिवार्य हो गया है।

आमतौर पर व्यवस्था परिवर्तन को एक जटिल प्रक्रिया मान लिया जाता है, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। अगर जन–जन ठान ले, तो यह सपना निश्चित रूप से साकार हो सकता है।

तो आइये, राष्ट्रीय कायाकल्प का ग्राहक बनकर, अपने सगे–संबंधियों, परिचितों को ग्राहक बनाकर इस राष्ट्रव्यापी पहल में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करें।

राष्ट्रीय कायाकल्प

173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001, फोनः 0612 2541276

सब कुछ टूटता-बिखरता हुआ

रविभूषण

भारत कृषि प्रधान देश से उद्योग–प्रधान देश नहीं बन सका है। वह लटका और झूलता हुआ है। न तो वह अब कृषि प्रधान देश रहा, न उद्योग–प्रधान, न पारंपरिक, न आधुनिक–अत्याधुनिक। वह एक साथ कई समय में जी रहा है, जिसे सुविधा के लिए 'भारतीय संयम' कहा जा सकता है। पचास के दशक में लगभग 80 प्रतिशत लोग गांवों में रहते थे और आरंभिक तीन पंचवर्षीय योजनओं में उनके लिए मात्र पंद्रह प्रतिशत का प्रावधान था। राज्य–नियंत्रित अर्थतंत्र की नीतियां नगर केंद्रित थीं।

हमारी बाह्येंद्रियों की एक सीमा है। हमारी आंखें बहुत दूर तक नही देख पातीं और न श्रवणेंद्रिय उन ध्वनियों को ग्रहण कर पाता है, जो बहुत दूर और समीप से अतिमंद रूप में फैलती हैं। जो दृश्य हैं– दृश्यमान, उससे बहुत कुछ नहीं जाना जा सकता। क्या हम निरंतर अपने जीवन, परिवार और समाज में उस टूटन और बिखराव को देखने–समझने में सचमुच सक्षम हैं, जो रूक नहीं रहा? चीजें हिल रही हैं, कांप रही हैं। आलीशान और चमकीले भवन को देख कर उसकी अपनी नींव का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। एक व्यक्ति, परिवार, समाज और देश की पहचान जिन मूल्यों, दृष्टियों, अवधारणाओं से होती रही हैं, क्या वे सब आज भी पूर्ववत हैं या उनमें किसी प्रकार के बदलाव को लक्षित किया जा सकता है? समय निरंतर परिवर्तशील है – एक सामान्य कथन है। समय को बदलनेवाली कारक शक्तियां ही प्रमुख हैं।

भारत कृषि प्रधान देश से उद्योग–प्रधान देश नहीं बन सका है। वह लटका और झूलता हुआ है। न तो वह अब कृषि प्रधान देश रहा, न उद्योग–प्रधान, न पारंपरिक, न आधुनिक–अत्याधुनिक। वह एक साथ कई समय में जी रहा है, जिसे सुविधा के लिए 'भारतीय संयम' कहा जा सकता है। पचास के दशक में लगभग 80 प्रतिशत लोग गांवों में रहते थे और आरंभिक तीन पंचवर्षीय योजनओं में उनके लिए मात्र पंद्रह प्रतिशत का प्रावधान था। राज्य–नियंत्रित अर्थतंत्र की नीतियां नगर केंद्रित थीं। स्वतंत्र भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया निरंतर जारी है – सिटी से स्मार्ट सिटी तक। बीसवीं सदी के आरंभ में गांधी और अरविंद अलग–अलग सभ्यता विमर्श कर रहे थे। गांधी ने 'हिंद स्वराज' और अरविंद ने 'फाउंडेशंस ऑफ इंडियन कल्चर' में सभ्यता ओर संस्कृति के प्रश्नों को अधिक महत्व दिया था। बाद में आर्थिक–सांस्कृतिक प्रश्न गौण हुए और राजनीतिक प्रश्न प्रमुख बने। गांधी ने 'हिंद स्वराज' में आधुनिक सभ्यता को पतन का प्रमुख कारण माना, जिसमें बाहरी दुनिया की खोज और शारीरिक सुख ही प्रमुख है। आधुनिक सभ्यता को उन्होंने तकनीकी विकास से जोड़ कर देखा था। आज तकनीकी विकास शीर्ष पर है, जिसने लोगों के जीवन में सुविधाओं का अंबार खड़ा कर दिया है। आजादी के समय ही गांधी ने कांग्रेस में सत्ता–लोलुपता देखी थी– बाद में प्रायः सभी राजनीतिक दलों में उन्नीस–बीस के अंतर से यह फैल गयी। तकनीकी विकास के साथ–साथ सत्ता–लोलुपता बढ़ती गयी है। 'विकसित' और 'विकासशील' देश में 'विकास' का अर्थ औद्योगिक–तकनीकी विकास है, जिसका सारा ढांचा यूरोपीय–अमेरिकी है। गांधी ने 'भारत की आत्मा' की बात कही थी और भारत के लिए यह खतरा

माना था कि वह अपनी आत्मा खो बैठे। उनके लिए भारत की आत्मा का पुनराविष्कार प्रमुख था और नेहरू के लिए यूरोपियन ढंग से नवीनीकरण। न तो पुनराविष्कार हुआ और न नवीनीकरण। नेहरू का स्वप्न औद्योगिक भारत का स्वप्न था। टैगोर के लिए मूल्य (वैल्यू) प्रमुख था। उन्होंने चिंतन और क्रिया की जिस स्वाधीनता पर बल दिया, स्वतंत्र भारत में वह स्वाधीनता दुर्लभ हो गयी। भारत के नीति–निर्माताओं ने अपनी पश्चिमोन्मुखी, अमेरिकीन्मुख दृष्टि को ही सर्वोपरि माना। आजादी के बाद कोई नयी संरचना–भारतीय संरचना निर्मित नहीं की गयी।

गांधी के निधन के साथ गांधी–युग समाप्त हुआ और नेहरू के निधन के बाद बीस वर्ष बाद नेहरू–युग भी। दोनों के निधन के साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता–आंदोलन की स्मृति और छाया भी दूर हो गयी। जिसे 'असली भारत' (रीयल इंडिया) कहा जाता है, वह कहां है? वही हिल रहा है। असली भारत को नकली भारत बनाने के सारे प्रयत्न जारी हैं। अरविंद ने 'उद्धार का एकमात्र उपाय' 'अपना केंद्र' और 'निजी आधार को ढूंढ़ना' माना था। आज देश का मन–मिजाज बदला जा रहा है। भारत का शिक्षित मध्यवर्ग और विशेषतः आज के युवा वर्ग का एक हिस्सा अपनी परंपराओं से मुक्त और उदासीन हैं। समाज में, जीवन में मान्यताओं का, सामाजिक मूल्यों का क्षरण जारी है, तीव्र है। आज योग्यता–मानक बदले हुए हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में चीजें आज जैसी साफ दिखायी नहीं देती थीं। उस समय नींव का हिलना कम दिखायी देता था। नयी प्रौद्योगिकी, नयी जीवनेशैली और नये माहौल में जो पुराना टूट रहा है, गिर रहा है, उसे कम देखा जा रहा है। हमने 'बाबूजी' 'पिताजी' 'पापा' से 'डैड' तक की यात्रा कर ली है। गांव से स्मार्ट सिटी तक। हटिया–हाट से शॉपिंग कॉम्प्लेक्स और मॉल तक। सब कुछ जल्दी बदला है। यूरोपीय देशों की तरह पुराने का त्याग कर यहां नवीकरण नहीं हुआ। एक साथ सामंतवाद और पूंजीवाद के सभी रूप (राजकीय पूंजी से बाजार–पूंजी तक) विद्यमान है। गांव–घर के साथ संबंध–रिश्ते बदल रहे हैं। जीवन कहीं अधिक यांत्रिक हो गया है। औपचारिकता, प्रदर्शन, कृत्रिमता, दिखावा सब चरम पर है। वह जो एक धागा लोगों को आपस में जोड़े रखता था, टूट रहा हैं भारत एक भंवर में फंसा हुआ हें लोकतंत्र के सभी पाये बुरी तरह से हिल रहे हैं। वे भीतर से कमजोर हो चुके है। होड़ा–होड़ी, छीना–झपटी, लूट–खसोट, मार–धाड़ कम नहीं है। हत्या और आत्महत्या की संख्या बढ़ रही है। अकेलापन बढ़ रहा है, पारिवारिकता, सामाजिकता, सामुदायिकता घट रही है। कल का जो भी पारिवारिक, मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा अपनी जड़ों से विच्छिन्न होता जा रहा है। जो जीवनशैली हमने विकसित की है, वह निहायत अश्लील, भद्दी, नकली, कृत्रिम, दिखावटी और सतही है। सांस्कृतिक क्षरण सर्वाधिक है। घर टूट रहा है, संबंधों में दूरी आ चुकी है और बाजार हमें नियंत्रित–संचालित कर रहा है। यह प्रक्रिया क्षरण और अलगाव की जारी है – सब कुछ जो अब तक मूल्यवान था – घर, परिवार, समाज, मैत्री, प्रेम, विश्वास, आस्था, उम्मीद, संबंध – सब टूट कर बिखर रहा है। एक अंधानुकरण में लिप्तता भयावह है। यह एक भूकंपकारी स्थिति है– स्वनिर्मित। हम सब मंझधार में फंसे और घिरे लोग हैं। एकल परिवार में एक–दूसरे के बारे में सोचनेवाले कम हैं। एक–दूसरे के साथ जीने का, सहारा देने का परंपरागत मूल्य नष्ट हो रहा है।

नेहरू ने अपनी आत्मकथा में अपने को एक प्रकार से 'निर्वासित' माना था– 'पश्चिम के लिए विजातीय और अजनबी' और अपने देश में 'निर्वासित'। अब यह दुविधा और बढ़ गयी है। नकल करने की प्रवृत्ति कहीं अधिक बढ़ी है। क्या परीक्षाओं में की जा रही नकल को मध्यवर्गीय पश्चिमी, अमेरिकी नकल से जोड़ कर देखना गलत है? इकबाल ने अपने समय में लिखा था– 'वतन की फिक्र कर नादां/मुसीबत आने वाली है/ तेरी बरबादियों के मशवरे हैं आसमानों में/ न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिंदोस्तां वालों/तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में'।

(लेखक एक विचारशील पत्रकार हैं। यह आलेख दैनिक समाचार पत्र 'प्रभात खबर' में प्रकाशित है जो प्रसंगवश 'राष्ट्रीय कायाकल्प' के इस अंक में साभार उद्धृत है)

आई.आई.टी. की मूल भावना और वर्तमान परिदृश्य का विरोधाभास

: हमारी शासन व्यवस्था की भूमिका :

आई०आई०टी० स्नातक पर 1956 की अपेक्षा अनुमानतः हजार गुणा विभिन्न माध्यमों से देश का खर्च होता है। यदि आई०आई०टी० से उत्तीर्ण इंजीनियरों का लेखा–जोखा लगाया जाय तो एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि भारत के विकास और भारतवासियों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने में आई०आई०टी० जैसे उत्कृष्ट संस्थानों से उत्तीर्ण इंजीनियरों की महती भूमिका की जो कल्पना की गयी थी वह आज कोरी कल्पना सिद्ध हो रही है।

खड़गपुर (पश्चिम बंगाल) में स्थापित भारत के प्रथम इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (आई०आई०टी०) के 1956 में हुए प्रथम दीक्षांत समारोह में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने जो दीक्षांत भाषण दिया था उसमें उन्होंने उभरते हुए भारत में इस और ऐसे तकनीकी संस्थानों से निकले हुए इंजीनियरों की विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका की ओर इंगित किया था। विश्व और इतिहास के संदर्भ में भारत को रखते हुए उन्होंने कहा था कि विकास और आम लोगों के जीवन स्तर के मामले में भारत कितना पीछे छूट गया है और इन क्षेत्रों में भारत को कितनी दूरी तय करनी है। तत्कालीन विश्व जहाँ औद्योगिक क्रांति से गुजर कर आणविक युग में प्रवेश कर गया है, तत्कालीन भारत में औद्योगिक क्रांति भी अभी तक नहीं आई थी। विकास और जीवन स्तर के इस अन्तराल को समाप्त या कम करने के लिए इंजीनियरों और विशेषतया आई०आई०टी० जैसे उत्कृष्ट तकनीकी संस्थानों से निकले हुए इंजीनियरों को लंबे समय तक अथक परिश्रम करना होगा। यदि किसी नीतिगत या अन्य कारणों से देश ऐसे इंजीनियरों की सेवा का उपयोग देशहित में नहीं कर पाता तो यह देश का दुर्भाग्य है।

आज छः दशकों के बाद इस संदर्भ में जो स्थिति उभर कर सामने आ रही है उस पर दृष्टिपात करना शिक्षाप्रद होगा। आज देश में सात पुराने और आठ नए आई०आई०टी० हैं। उनमें उपलब्ध सुविधा और उन पर किए जा रहे सरकारी व्यय कमोबेश उसी स्तर के है। जहाँ 1956 में 40 करोड़ से कम भारत की आबादी पर एक आई०आई०टी० था, वहाँ 2015 में 123 करोड़ से अधिक भारत की आबादी के लिए 15 आई०आई०टी० हैं। इनमें उपलब्ध सीटों की संख्या भी काफी बढ़ी हैं। फिर आई०आई०टी० में प्रवेश के लिए इतनी होड़, आपाधापी, कोचिंग संस्थानों का इतना विशाल और समृद्ध व्यवसाय है कि एक आई०आई०टी० स्नातक पर 1956 की अपेक्षा अनुमानतः हजार गुणा विभिन्न माध्यमों से देश का खर्च होता है। यदि आई०आई०टी० से उत्तीर्ण इंजीनियरों का लेखा–जोखा लगाया जाय तो एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि भारत के विकास और भारतवासियों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने में आई०आई०टी० जैसे उत्कृष्ट संस्थानों से उत्तीर्ण इंजीनियरों की महती भूमिका

की जो कल्पना की गयी थी वह आज कोरी कल्पना सिद्ध हो रही है। एक शुद्ध अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि आज आई०आई०टी० उत्तीर्ण इंजीनियरों का 40% से 50% अच्छी नौकरी और जीवन वृत्ति के लिए विदेश का रूख करते हैं। देश में रहने वालों का अच्छा खासा भाग भारत में अच्छा वेतन देने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों या कॉरपोरेट घरानों के भारतीय प्रतिष्ठानों मे काम करते हैं। फिर आई०आई०टी० से उत्तीर्ण इंजीनियरों का अनुमानतः 50% बेहतर आय और सुविधा के लिए अपना कार्य क्षेत्र बदल लेते हैं और इंजीनियरिंग से इतर प्रबंधन, वित्त, विज्ञापन, प्रशासन या अन्य क्षेत्रों को अपना पेशा बना लेते हैं।

जो भी हो, अनुमानित संख्या या प्रतिशत कितना भी ठीक या बेठीक हो, यह बात तो निश्चित है कि आई०आई०टी० जैसे उत्कृष्ट तकनीकी संस्थानों की स्थापना में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ने 1950 के दशक में जो कल्पना की थी, आशा की थी, अपेक्षा की थी – यथा इन संस्थानों से उत्तीर्ण इंजीनियर देश के विकास और देशवासियों के जीवन–स्तर को ऊपर उठाने में, जो पिछले दो सौ वर्षों के औपनिवेशिक शोषण काल में निम्न स्तर पर पहुँच गया था, अपनी महती भूमिका निभाएंगे – आज धूल धूसरित हो रही है। इस परिदृश्य का विश्लेषण और तात्त्विक मूल्यांकन शिक्षा प्रद होगा।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ और 26 जनवरी 1950 से भारत में भारतीय संविधान लागू हुआ और भारत एक लोकतांत्रिक गणतंत्र बन गया। 1956 में दिए गए अपने दीक्षांत भाषण में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ने कहा था कि औपनिवेशिक काल में बहुत सी राजनैतिक और आर्थिक संस्थाएं और संरचनाएं बनीं जो भारत को आगे बढ़ने में बाधक या अवरोधक थी और भारत को आगे बढ़ने के लिए उनको ध्वस्त करना आवश्यक था और पिछले आठ नौ सालों मे भारत के प्रधानमंत्री की हैसियत से उन्हें ऐसा करने का अवसर मिला और उन्होंने बहुत कुछ वैसा किया भी। फलस्वरूप भारत उन वर्षों में और बाद में भी आगे बढ़ा भी। लेकिन आज उस दीक्षांत भाषण के छः दशकों के बाद भारत का जो परिदृश्य उभरा है वह उनकी आशा और आकांक्षाओं के सर्वथा अनुकूल नहीं है, न भारत के विकास के मामले में या लोगों के जीवन स्तर के मामले में। साथ ही राष्ट्रीय जीवन में बहुत सी समस्याएं और विकृतयां भी उत्पन्न हुई हैं जिनका आभास उस समय उतना उजागर नहीं था – यथा भ्रष्टाचार, राजनीति में नैतिकता की गिरावट, सामाजिक अशांति ओर अन्तर्विद्रोह इत्यादि। जब उन्होंने कहा कि देश के विकास में पहले से आ रही बहुत सी राजनीतिक और आर्थिक संरचनाएं रोड़े के रूप में कार्यरत थीं और प्रधानमंत्री की हैसियत से उन्हें रास्ते से हटाने का काम करना पड़ा। लेकिन एक बहुत मौलिक संस्थागत रोड़ा जो था उस पर उनका ध्यान नहीं गया। वह था देश की शासन व्यवस्था। यह व्यवस्था मूल रूप से वही है जो भारत की गुलामी की शोषणात्मक और अनैतिकतापरक औपनिवेशिक शासन व्यवस्था थी जिसे संविधान में अपना कर उसे एक तरह से प्रतिष्ठित कर दिया गया। इस सम्बंध में वे अपने गुरू और मार्गदर्शक महात्मा गाँधी की यह बात भूल गए या उसकी उपेक्षा कर दी कि ''औपनिवेशिक भारत में इसकी बदहाली का मूल कारण अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गयी शासन व्यवस्था है। अतः भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य है, इस शासन व्यवस्था को हटाना, अंग्रेज चाहें रहें या जायें।'' इसके लिए भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता अनिवार्य थी। लेकिन देश को 15 अगस्त 1947 को राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारे प्रथम प्रधान मंत्री महात्मा गाँधी की दृष्टि में स्वतंत्रता संग्राम का जो लक्ष्य था, शासन व्यवस्था परिवर्त्तन, उसको भूल गए। ऐसी ही बातों का मन में आभास और अहसास रहने की वजह से उन्होंने अपने दीक्षांत भाषण में कहा था कि उनकी पीढ़ी के लोग न समझने की वजह से गाँधी जी की बातों की उपेक्षा करते हैं लेकिन आने वाली पीढ़ियां

उनका महत्त्व समझेंगी और उन्हें अपनाने का प्रयास करेंगी। संभवतः शासन व्यवस्था परिवर्त्तन पिछली पीढ़ियों द्वारा उपेक्षित की गई उन्हीं सब बातों में एक हो।

आधुनिक भारत की नींव रखने वाले भारत के प्रथम प्रधानमंत्री की अपेक्षाओं के विपरीत आज जो आई०आई०टी० से उत्तीर्ण इंजीनियरों की भारत के सम्बंध में जो भूमिका हो रही है उसे हम शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की महात्मा गाँधी इसी सीख के संदर्भ में देख सकते हैं। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट देखा था कि इसी शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था के बल पर अंग्रेजों ने सौ वर्षों तक भारत को शांतिपूर्ण और व्यवस्थित ढंग से लूटा था और जनता लुट रही थी, गरीब हो रही थी, बदहाल हो रही थी। आज इसी शासन व्यवस्था के बल पर नेता, अफसर, और सम्बद्ध लोग देश को लूट रहे हैं और जनता अपनी गरीबी और बदहाली से इसका खामियाजा भुगत रही है। जब से तथाकथित आर्थिक सुधार देश में लागू हुआ तो इस लूट में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भी शामिल हो गईं और जनता के लुटने की गति और भी तीव्र हो गई और दयरा और भी बढ़ गया। लूट के विस्तृत होते तंत्र में आईआईटीयंस भी शामिल हो गए। देश की प्रसंस्कृत प्रतिभा का शोषण अन्तर्राष्ट्रीय शोषणात्मक अर्थव्यवस्था में एक कड़ी के रूप में है। नव उपनिवेशवाद या नव साम्राज्यवाद में किसी देश के शोषण की यह नयी व्यवस्था और परम्परा है। प्रतिभा सम्पन्न देश लाख मुसीबत सहकर और अपार धन खर्च कर उस प्रतिभा को सँवारे और सात समुंदर पार बसा हुआ एक देश अपनी अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में उस सँवरी हुई प्रतिभा का उपयोग करे, यही तो नव साम्राज्यवादी या नव उपनिवेशवादी व्यवस्था है। यही बात

आधुनिक भारत की नींव रखने वाले भारत के प्रथम प्रधानमंत्री की अपेक्षाओं के विपरीत आज जो आई०आई०टी० से उत्तीर्ण इंजीनियरों की भारत के सम्बंध में जो भूमिका हो रही है उसे हम शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की महात्मा गाँधी इसी सीख के संदर्भ में देख सकते हैं। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट देखा था कि इसी शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था के बल पर अंग्रेजों ने सौ वर्षों तक भारत को शांतिपूर्ण और व्यवस्थित ढंग से लूटा था और जनता लुट रही थी, गरीब हो रही थी, बदहाल हो रही थी। आज इसी शासन व्यवस्था के बल पर नेता, अफसर, और सम्बद्ध लोग देश को लूट रहे हैं और जनता अपनी गरीबी और बदहाली से इसका खामियाजा भुगत रही है। जब से तथाकथित आर्थिक सुधार देश में लागू हुआ तो इस लूट में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भी शामिल हो गईं और जनता के लुटने की गति और भी तीव्र हो गई और दयरा और भी बढ़ गया।

प्राकृतिक संसाधन सम्पन्न देशों के सम्बंध में भी लागू है। इस व्यवस्था में यह एकदम आवश्यक नहीं कि साधन सम्पन्न देश समृद्ध भी हों।

भारत भी इसी वैश्विक व्यवस्था नव साम्राज्यवाद या नव उपनिवेशवाद का शिकार है। आई०आई०टी० का संदर्भ इसी बात को उजागर करता है। सत्रहवीं सदी में यूरोप में औद्योगिक क्रांति आई। भारत इस क्रांति का लाभुक होने को तैयार नहीं था, भारत इसका शिकार हो गया, भारत एक उपनिवेश बन गया। चालीस के दशक में विश्व में आणविक युग आया। डॉ० भाभा जैसे वैज्ञानिकों की सोच और देश द्वारा उस प्रतिभा की पहचान के सहारे भारत इस आणविक युग में कुछ आगे बढ़ सका लेकिन अभी भी इसका पूरा लाभ लेने में अक्षम है और इसके लिए इस क्षेत्र में बढ़त हासिल किए हुए अन्य देशों पर आश्रित है। पचास–साठ के दशक में विश्व में अंतरिक्ष युग आया और भारत के कतिपय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के प्रयास भारत से इस युग में प्रवेश तो कर गया पर इसका पूर्ण लाभ लेने में भारत प्रयास के बावजूद अभी भी पूरी तरह सक्षम नहीं हो सका है। और अब इक्कीसवीं शताब्दी में विश्व में सूचना और संचार क्रांति जोरदार ढंग से आई है और हमारे जीवन के विभिन्न आयामों को प्रभावित कर रही है। इस क्रांति के युग में भी भारत की स्थिति ज्यादातर कुछ रोजगार सृजन और विशेषतया अपने विशाल बाजार के साथ उपभोक्ता के रूप में ही है। 'ड्राइविंग सीट' पर होने के विशाल संभावित लाभ से कोसों दूर। भारत इन वैश्विक क्रांतियों का शिकार या कम लाभुक इसलिए है कि भारत की अपनी ही व्यवस्था शोषणात्मक और अनैतिकतापरक है। और जब तक भारत एक गुलाम देश की व्यवस्था से संचालित होता रहेगा, राजनीतिक स्वतंत्रता रहते हुए भी भारत कभी भी सच्चे अर्थों में एक स्वतंत्र एवं प्रतिभासम्पन्न देश के रूप में कार्यशील नहीं होगा। विश्व में ज्ञानयुग अवतरित होने और स्वयं में ज्ञान की परम्परा और धरोहर होने के बावजूद भारत ज्ञान युग का पूर्ण लाभुक नहीं बन सका है, अपने को विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र की उद्घोषणा के बावजूद सच्चे अर्थों में एक ज्वलंत लोकतांत्रिक व्यवस्था का देश नहीं बन सका, और आईआईटीयन जैसी प्रतिभाओं का देश होने पर भी उस प्रतिभा के लाभ से वंचित रहने को अभिशप्त है। और ऐसा इसलिए है कि भारत का राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन एक शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था से संचालित है। ।

स्वतंत्रता दिवस पर...

रश्मि अभय

जिस दिन मेरे फैसलों पर...
औरों की स्वीकृति की मोहर ना लगे...
जिस दिन दकियानूसी रिवाजों
में मेरे मन को बांधा ना जाये...
जिस दिन मेरे वजूद पर
सवालों की बौछार ना हो...
जिस दिन मेरे लिबास पर
किसी की कुदृष्टि ना पड़े...
मैं भी स्वच्छंद होकर जी सकूँ...
खुद को खोने का भय ना हो...
कोई मुझसे ये ना कहे शाम
होने से पहले लौट आना...
वो सुनसान सी गली है
उधर अकेले मत जाना...
जब मैं थक के घर आऊं
मुझे भी प्यार के दो शब्द मिले...
मुझमें खुद के होने का
अपनों का विश्वास मिले...
उस दिन मैं समझूँगी...
कि ये है वास्तविक आजादी के दिन!!!

(इस कविता की लेखिका एक उदीयमान साहित्यिक और पत्रकार हैं।
प्रस्तुत कविता समकालीन भारतीय समाज में नारी स्वतंत्रता की स्थिति पर प्रकाश डालती है)

शासन व्यवस्था और सामाजिक अशांति

विजय नाथ झा

पिछले दिनों हमने देश का 68वाँ स्वतंत्रता दिवस मनाया है। इस अवसर पर देश–प्रदेश के शीर्षस्थ नेताओं ने जनता के बीच बड़ी–बड़ी बातें कीं। अपनी उपलब्धियों का सब्जबाग दिखाते हुए अपनी सार्थकता के गीत गाते रहे। लेकिन अपने लोकतंत्र का मौजूदा स्वरूप इन दिग्गज नेताओं के सम्भाषणों से ताल–मेल खाता नहीं नजर आ रहा। भारतीय शासनतंत्र की कुछ खामियाँ, कुछ कमियाँ इसे कमजोर कर रही हैं। यह शासन प्रणाली आज भी देश के आम नागरिकों की बहुत बड़ी संख्या को उनका वाजिब हक मुहैया कराने में असमर्थ अथवा उदासीन जैसे दीखती है।

देश को आजाद हुए सात दशक होने को हैं, पर सही अर्थों में हमें इसकी अनुभूति नहीं हो पा रही है। समस्याओं का मकड़जाल दिन ब दिन हमें अपनी गिरफ्त में कसता जा रहा है। यह हमारी परेशानी अथवा अशांति का सबब बना हुआ है। मुख्यतः आर्थिक विषमता की बढ़ती खाई हमारे वांछित सुख शांति को निगलती जा रही है और हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने यह सब झेलने को विवश या दूसरे शब्दों में कहें तो अभिशप्त हैं। सामाजिक अशांति और बढ़ते अन्तर्विरोध के कारण सामाजिक–पारिवारिक समरसता का तेजी से लोप हो रहा है और हम तरह–तरह की विकृतियों से जकड़ते जा रहे हैं। हत्या, अपराध और लूट–खसोट का ग्राफ उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है जो हमारे रूग्ण और शोषित मानसिकता का परिचायक कहा जा सकता है। गंभीरता के साथ विचार करने पर यही लगता है कि यह उत्पीड़न, यह कसक यह पनपता अन्तर्विरोध अपनी शासन–व्यवस्था की ढुलमुल नीतियों का ही प्रतिफल है। ये समस्याएँ जैसे हमारे लिए लाइलाज हो गयी हैं और समस्याग्रस्त आम लोगों के लिए इन्हें झेलने के सिवा और कोई रास्ता नहीं। लेकिन इन दुःस्थितियों से यदि वाकई हमें उबरना है तो सबसे पहले हमें अपनी कुंठा तोड़नी होगी और समस्या की तह तक पहुँचना होगा।

अभी पिछले दिनों हमने देश का 68वाँ स्वतंत्रता दिवस मनाया है। इस अवसर पर देश–प्रदेश के शीर्षस्थ नेताओं ने जनता के बीच बड़ी–बड़ी बातें कीं। अपनी उपलब्धियों का सब्जबाग दिखाते हुए अपनी सार्थकता के गीत गाते रहे। लेकिन अपने लोकतंत्र का मौजूदा स्वरूप इन दिग्गज नेताओं के सम्भाषणों से ताल–मेल खाता नहीं नजर आ रहा। भारतीय शासनतंत्र की कुछ खामियाँ, कुछ कमियाँ इसे कमजोर कर रही हैं। यह शासन प्रणाली आज भी देश के आम नागरिकों की बहुत बड़ी संख्या को उनका वाजिब हक मुहैया कराने में असमर्थ अथवा उदासीन जैसे दीखती है। यह सिलसिला काफी पुराना है जिसकी सीधी मार कमजोर तबके के लोग झेलते चले आ रहें हैं। कहना गलत नहीं कि हमारा तंत्र अब भी देश के आम नागरिकों को शासक की नजर से ही देखता है। जब कि यह भी सच है कि आम नागरिकों की सामाजिक और राजनैतिक हैसियत जितनी कमजोर होती है उससे शासनतंत्र की उतनी ही ज्यादे अलोकतांत्रिकता उजागर होती है। आज की जीवन शैली पूरी तरह से अर्थ–आधारित हो गयी है। इसकी भरपाई में, खास कर निर्धन वर्ग, पूरी मशक्कत करके भी अपने रोजमर्रा के अभाव को कम नहीं कर पा रहा है। सरकार या शासन की ओर से इन्हें

मिलने वाली सुविधा विचौलियें के पेट भरती है और ये टुकुर–टुकुर देखते रहते हैं।

हम सभी जानते हैं कि अंग्रेजों ने इस देश पर लम्बे समय तक राज किया। उनका मनसा भारत के शोषण पर केन्द्रित था, जिसका उन्होंने खुलकर इस्तेमाल किया। लूट–पाट के इस मन्शा को साधने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ की जनता की नैतिकता को गिराकर अपना मार्ग आसान कर लिया। इसी आलोक में उन्होंने 'बाँटो ओर राज करो' की नीति की नींव रखी और वे अपने शोषणात्मक गतिविधियों के साथ आगे बढ़ते रहे। देश के कुछ जाने–माने लोग अंग्रेजों के इस शोषण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शामिल थे, जिनमें देश के राजे–महाराजे, वकील, डॉक्टर आदि खास तौर पर अपनी भूमिका निभाते थे। इन्हें लाभुक वर्ग कहा गया और ये अंग्रेजों द्वारा लूटी गयी राशि का एक अंश लाभ के रूप में पाते थे। अंग्रेजों द्वारा इस लूट–खसोट का सीधा असर ग्रामीणों पर पड़ा। आजादी से पूर्व 1935 में प्रकाशित पुस्तक ''आचार नरेन्द्र देव – युग और विचार'' के कुछ अंश जो तत्कालीन किसानों की दुर्दशा से जुड़े थे, – यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा जो अंग्रेजों के शोषणकारी रवैये का चित्र प्रस्तुत करता है। तदनुसार वर्णित ब्योरे में कहा गया कि ''कृषि समस्या दिन–प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। कृषि उत्पादों के मूल्य घट जाने से उनसे प्राप्त होने वाला लाभ समाप्त हो गया है। जीविका स्तर भुखमरी की हालत से भी नीचे गिरता जा रहा है। कृषि समस्या के लिए मूलभूत हल की जरूरत है और यदि किसानों की स्थिति में सुधार हेतु प्रभावी कदम नहीं उठाये गये तो स्थिति बद से बद्तर हो जायेगी। किन्तु (तत्कालीन निर्मित) नये एक्ट (1935) में जमींदारों के हितों को सुरक्षा प्रदान करने के प्रति सावधानी बरती गयी है और जमींदारों की हैसियत को तरजीह दी गई और उनके प्राप्त सुविधाओं को सीमित करने की अनुमति नहीं दी गयी है।''

गाँवों की इस दुर्दशा से उद्वेलित गाँधी जी इसे दूर करने के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता लाना चाहते थे। वे चाहते थे कि ग्रामीण अंग्रेजों का सहयोग करना बंद कर दें। इस आलोक में उन्होंने अहिंसक असहयोग करने की बात की थी। दूसरी ओर, देश में आजादी के लिए स्वतंत्रता संग्राम तेजी से आगे बढ़ रहा था। अंततः इस जद्दोजहद के परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने घुटने टेक दिये और 1946 के सितम्बर महीने में ही नेहरू जी को देश का इंटरिम प्राइम मिनिस्टर बना दिया गया। उनके साथ सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद आदि भी सत्ता में शामिल कर लिये गये थे। इस प्रकार ब्रिटिश संसद से पारित भारतीय स्वतंत्रता कानून 1947 के तहत सत्ता हस्तांतरित कर दी गयी। भारत के लिए संविधान बनाने का काम ब्रिटिश योजना के तहत 1946 में ही शुरू कर दिया गया था जिसके अनुसार संविधान सभा में वैसे सदस्यों की संख्या अधिक थी जो भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के लाभुक थे और चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में भी यही व्यवस्था कायम रहे। गाँधी जी और देश में कांग्रेस के आला अधिकारी इस संविधान के गठन में भारत के ग्रामीण वर्ग को भी शामिल करना चाहते थे – जो हो नहीं सका। इस प्रकार मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मौजूदा भारतीय संविधान में प्रकारांतर से अंग्रेजों की नीतियें का समावेश कायम है। इस प्रकार भारतीय संविधान के निर्माण में महात्मा गांधी की मनोकांक्षाओं की अनदेखी राजनेताओं की अदूरदर्शिता का संकेत देती है। इस प्रसंग में उनके विचारों की की गयी उपेक्षा ने उन्हें काफी मर्माहत किया। यह एक बड़ी ऐतिहासिक भूल है, जिसे मौजूदा राजनीति के सुविज्ञ लोग महसूस करते हैं। देश–प्रदेश की शासन प्रणाली को चुस्त–दुरूस्त करने के लिए इसमें संशोधन की जरूरत है। इस बिन्दु पर सभी को सोचना–समझना चाहिए। गंभीरता से विचार करने पर यही लगता है कि गणतंत्र भारत की शासन व्यवस्था वस्तुतः औपनिवेशिक भारत की ही शासन व्यवस्था है और यही हमारे संविधान में मोटे तोर पर वर्णित है। 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो संविधान बनाया गया उसमें जनता की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं का विस्तार पूर्वक उल्लेख तो है, लेकिन साथ ही यह भी दुर्भागय रहा कि उन्हें सरजमीं पर लाने के लिए मूलतः 1935 के एक्ट में प्रतिपादित उसी शोषण मूलक शासन व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया जो नैतिक अधोपतन की संपोषक थी और जिसे देश से निर्वासित करने के लिए कांग्रेस प्रतिबद्ध थी। दुखी मन से महात्मा गांधी ने इस आलोक मे कहा था कि स्वतंत्र भारत की शासन व्यवस्था यदि ऐसी ही रह जाती है तो देश के आने वाले दिन दुर्दशाग्रस्त होंगे ही। उनकी इस सोच की सच्चाई मोजूदा राजनीतिक चेतना के बिखरते स्वरूप में देश की दुर्गति का बयान करती है। राजनीति में नैतिकता का अधोपतन देश को कमजोर बनाये जा रहा है। गरीबी–अमीरी के बीच बढ़ती जा रही खाई आज के आम लोगों को उद्वेलित ओर अशांत किये हुए है। देश में हत्या, बलात्कार, लूट का जो नंगा नाच जारी है, वह घटने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन आदि क्षेत्रों में अराजकता का बाजार गर्म दिखायी दे रहा है। क्या इन सभी अधोगामी दुःस्थितियों के लिए अपनी

शासन प्रणाली जिम्मेदार नहीं है? यह कहने में कोई हिचक नहीं जो इन जटिल समस्याओं को दबाने के लिए व्यवस्था के पास सबसे कारगर तरीका पुलिसिया लाठी भांजना ही दिखायी देता है। इससे समस्या का माकूल निदान तो होता नहीं और प्रताड़ित जनमानस व्यवस्था जन्य डंडे खाकर भी स्थिति ढ़ाक के तीन पात ही बनी रहती है।

अभी कुछ दिनों पूर्व घटी धार्मिक उन्माद की एक हृदयविदारक घटना ने शासकीय व्यवस्था की अदूरदर्शिता का जो संकेत दिया है, वह कम दुखद नहीं है। घटना झारखण्ड स्थित देवघर में बाबाधाम की है जहाँ पिछले दिन मंदिर में अपार जनसमूह को नियंत्रित कर पाने में विफल पुलिस महकमा ने लाठी चार्ज किया। इससे मची भगदड़ के कारण अखबारी सूत्रों के मुताबिक 11 लोगों की मौत हो गयी और शताधिक लोग गंभीर रूप से घायल हो गये। यहाँ विचारणीय मुद्दा यह है कि प्रशासन द्वारा घटना घट जाने के बाद जो चौकसी दिखायी जाती है – क्या वह इस मामले में पहले से जरूरी नहीं? यह व्यवस्था की खामियों को ही उजागर करती है। पिछले वर्ष पटना के गाँधी मैदान में हुए रावण वध के दौरान भी ऐसी ही भगदड़ मची थी जिससे दर्जनों लोगों की जानें चली गयी थीं। बताया गया था कि अपार भीड़ को देखते हुए निकास द्वार का सकरा होना इस दुर्घटना का मुख्य कारण बना। ऐसे हादसों को देखते हुए प्यास से मरने के बाद शासन द्वारा कुआँ खोदने की यह परिपाटी हमें बहुत कुछ सोचने को विवश करती है। पर दुख की बात यह है कि इतने पर व्यवस्था के कान सहीं ढंग से खड़े नही हो पाते और वे लकीर के फकीर बने अपनी सेवा सम्पुष्टि में लगे रहते है।

दूसरी ओर जहाँ तक देश की गरीबी का प्रश्न है, वह घटने की जगह बढ़ती ही जा रही है। इस मामले में जो सरकारी आँकडें दिखाये जाते हैं, वे ये सही अर्थों में भ्रामक होते है। हम जानते हैं कि अंग्रेजों के यहाँ आने के समय भारत दुनिया का छठा सम्पन्न देश था । इसके पास उस समय विश्व सम्पदा का पच्चीस प्रतिशत धन मौजूद था। लेकिन अंग्रेजों के लूट खसोट से बेतरह प्रभावित होने के कारण भारत लगातार गरीब हेाता रहा जो स्वतंत्र भारत में भी बदस्तूर जारी रहा। मौजूदा एक सर्वे के मुताबिक आज अपने देश की सम्पन्नता पूरी दुनिया के आलोक में 130वें नम्बर पर चली गयी है। सम्पत्ति के मामले में आज वैश्विक धन का महज डेढ़ प्रतिशत हिस्सा भारत के पास है। ये आँकड़े कहीं न कहीं हमारी शासन व्यवस्था का पोल खोलते है।

हम अपने मौजूदा लाकतंत्रिक व्यवस्था को विश्व स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि भारत में फिलवक्त 30 राज्य सरकारें और 1 केन्द्र सरकार यहाँ के लगभाग 121 करोड़ लोगों की देखरेख करती है। जब कि अमेरिका में, जिसकी आबादी 35 करोड़ है, 92000 सरकारें इस काम में लगी हुई हैं, जो जनता के अधिकारों के साथ जुड़ी हुई हैं। कहना गलत नहीं कि अपने यहाँ समावेशी शासन व्यवस्था का नितान्त अभाव रहा है

जब हम अपने मौजूदा लोकतंत्रिक व्यवस्था को विश्व स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि भारत में फिलवक्त 30 राज्य सरकारें और 1 केन्द्र सरकार यहाँ के लगभाग 121 करोड़ लोगों की देखरेख करती है। जब कि अमेरिका में, जिसकी आबादी 35 करोड़ है, 92000 सरकारें इस काम में लगी हुई हैं, जो जनता के अधिकारों के साथ जुड़ी हुई हैं। कहना गलत नहीं कि अपने यहाँ समावेशी शासन व्यवस्था का नितान्त अभाव रहा है जिसके फलस्वरूप जनता में विद्रोह और असंतोष का बढ़ते रहना स्वाभाविक है।

अगले दो–तीन महीनों के भीतर बिहार में विधानसभा का चुनाव होने वाला है। सभी दलों के नेता अपनी डफली अपना राग टेरने में लगे हैं। लेकिन इस संदर्भ में उनके हो रहे भाषणों में आरोप–प्रत्यारोप की प्रयुक्त भाषा शाब्दिक मर्यादा को ताक पर रख कर बोली जा रही है। उनके ओछे और अमर्यादित शब्द वाणों के हो रहे प्रयोग जनता मे क्या संदेश दे रहे हैं, उन्हें इसकी कोई परवाह नहीं। अपनी बात कहने का सभी को पूरा अधिकार है, पर वैचारिक और भाषाई संयम का अनुपालन स्वस्थ लोकतंत्र का पोषक है – शायद वे इस तथ्य से स्वार्थवश कतराने लगे है। कहना गलत नहीं कि इसे भूलना उनकी चूक है, लेकिन वे इसे मानें तब तो।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि देश आज अन्तः–बाह्य समस्याओं और चुनौतियों से घिरा हुआ है। अस्थिरता–वाद, अवसरवाद, सम्प्रदायवाद, जाति–वाद, सुविधावाद ओर क्षेत्रवाद के फैलते जाल ने भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद को ही हिलाकर रख दिया है। बौना एवं कमजोर नेतृत्व, स्वार्थ एवं भ्रष्टाचार मे लिप्त प्रशासन तथा अशक्त अक्षम व्यवस्था ने देश को रोग ग्रस्त बना कर छोड़ दिया है। किसी लोकतांत्रिक देश के लिए यह खतरे को घंटी है। इसलिए राष्ट्रहित के नाम पर सभी को जगने की जरूरत है। स्वस्थ लोकतंत्र के पुर्नगठन के बिना यह संभव नहीं लगता।

(लेखक बिहार के एक लब्ध–प्रतिष्ठ पत्रकार हैं)

जहाँ बातें रुकी पड़ी हैं- एक प्रवाह चिंतन, कमरों से बाहर

श्रीराम तिवारी

छोटे स्कूलों में सरकार अपने यहाँ भोजन बनवा रही है। समानता के नाम पर पोशाक मिल रहे हैं – पोशाक बच्चे–बच्चियों को। गति के लिए साइकिल। विचारों, संस्कारों की पढ़ाई गायब। गैर सरकारी स्कूलों में नौकरी पाने लायक की शिक्षा। नये मालिक वहाँ तैयार हो रहे हैं। घनिकों के बच्चे world class स्कूलों में मालिक बनेंगे। मध्यवर्ग कम्प्यूटर लेकर हांफता भागता हुआ। परिवार के लिए भी समय नहीं। सब कुछ औपचारिक। सरकारी स्कूलों के बच्चे अन्ततः नौकर। इसी से अशांत पीढ़ियाँ जनम रही हैं। भीड़ें जुटाई जा रही हैं रैलियों में।

मुक्त पूंजी प्रवाह और उपभोग का ऐसा रिश्ता कायम हो चुका है कि पूरा जीवन ही वास्तविक नहीं, आभासी हो गया है। सामूहिक जीवन के पास कोई एजेंडा नहीं है, किसी के पास कोई अन्तर्वस्तु (content) नहीं है, केवल एक रूप (form) है। मनुष्य का हर समुदाय अपने अन्तर्विरोधों का शिकार है। यह एक भयावह खबर है।

ऐसे में कोई सकारात्मक ऊर्जा ही नहीं बची है। आजादी की लड़ाई में यह ऊर्जा थी। आज किसी के पास अपना नजरिया नहीं हैं, हम दूसरों की नजर से देख रहे हैं। बहसें कमरों, शीत–घरों में ही हो रही हैं। कुंठाएँ हावी हैं। हम एक अक्षम देश के नागरिक हैं। ज्ञान के नाम पर हमारे पास या तो रूढ़िवादिता है या भौतिकवादी ज्ञान। ज्ञान है संवेदनशील होना। सांस्कृतिक मनुष्य होना ज्ञान है। मूल्य और विचार तभी पनपते हैं, वृक्ष बनते हैं। उनकी छाँव में टिकाव मिलता है। अन्तर्विरोधों के खिलाफ जब सांस्कृतिक आंदोलन होते हैं तभी सामंती, उपनिवेशी मानसिकता का अतिक्रमण आगे ले जाता है। नहीं तो सामाजिक अशांति ओर अन्तर्विद्रोह एक नकली सत्य की तरह आम नियति से चिपक जाता है। तो निश्चित ही हम दिखावे की दौड़ में हैं, मूल्यों और विचारों के तिरोहण के दौर में। कहीं छाँव नहीं है। अब छांव ही – मानव–सूचकांक ही छांव खोज रहे हैं। अब न शिक्षा है, न लर्निंग है, न उसके लिए किसी के पास फुरसत। हम भौतिकवादी, उपनिवेशी लिगेसी की अंधी दौड़ में एक साथ शामिल हैं। पता नहीं लोग सड़कों पर कहाँ भागे जा रहे हैं – जो भी साधन हैं – मोटर साइकिल, कार, भाड़े की गाड़ियाँ। प्रतीकहीन, स्मृतिहीन जीवन हैं हम। मात्र स्मृतिहीन जीने के ढर्रे से अतीतजीवी। भविष्य का कोई ब्लूप्रिन्ट नहीं है। हमारे पास न नैतिकता का इतिहास है न स्थानीयता का भूगोल। सारे कुछ के ध्वस्त होने की स्थिति है। ज्ञानयोग पूछता है – तुम कौन हो, काहे के लिए धरती पर आए हो? कर्मयोग कहता है – तुम केवल अपने लिए आए हो। जैसे हो, सिर्फ अपना बढ़ाओ।

इसी बीच शिव कुमार पाठक नामक प्राइमरी स्कूल के शिक्षक ने कमाल कर दिया। इलाहाबाद हाई कोर्ट में उसने एक याचिका दायर कर दी – शिक्षक की नियुक्ति राज्य सत्ता की मनमर्जी के अधीन है। वह चाहे उनसे जो काम ले। सरकारी स्कूलों में उन नौकरशाहों, राजनेताओं, पैसों वालों के बच्चे नहीं पढ़ते जो सरकार चलाते, सरकार से जीते है। दो तरह के स्कूल, दो तरह के अस्पताल हैं। यही tkfrokn@o.kZokn का नया भेद–भाव है। अमीर ज्यादा अमीर – सुविधाग्रस्त हो रहे हैं। गरीब ज्यादा गरीब – सुविधाहीन। ललक नीचेवालों की ऊपरवालों की सीढ़ी पर चढ़ने और उनकी नकल करने की है– हर मामले में – उपभोग हो या

पहनावा या पढ़ाई–लिखाई। साधन नहीं हैं। सरकारें बुतपरस्तों, पैसेवालों के लिए है। कहने के लिए लोकतंत्र है। एक तरफ द्वीपों की तरह अमीर इंडिया बन रहा है तो दूसरी तरह बहुसंख्यक जन का गरीब भारत।

तो सामाजिक अशांति और अन्तर्विद्रोह का पहला और अंतिम कारण शासकीय पद्धति में है जिससे केवल अपने लिए जीने का रिसाव होता है। नीचे के लोग इसी को चाहते या झेलते हैं। शासकीय व्यवस्था जो नितान्त औपनिवेशिक ही बना कर रखी गई उसपर पहले की तरह दबंगों, मालिक वर्गों का वर्चस्व है। इन्हीं के हितों का पोषण यह व्यवस्था करती है। पहले यह बौद्धिकों को दिखता था। अब साधारण लोगों की समझ में भी आ गया है। लेकिन सारी मानसिकता स्थानीयता या तात्कालिकता में बंटी हुई है। असंतोष व्यापक नहीं है और न उसका भारतीय मूल्यों पर आधारित गाँधीजी जैसा नेतृत्व है। अपराधी विचारधारा की आड़ लेकर अपना काम साध रहे हैं। अन्तर्विद्रोहियों के बच्चे दून स्कूल और विदेशों में पढ़ रहे हैं। तो पुनः सामाजिक अशांति पैदा करना भी एक नयी राजनीतिक खेती है हमारे लोकतंत्र में। क्षेत्रवाद, भाषावाद, आरक्षणवाद ही नये विचारधारात्म वाद हैं। चुनावों में पार्टियों के रेट खुलने से लेकर मीडिया के भी रेट हैं। TRP एकमात्र लक्ष्य है। एक पूरा भ्रमजाल फैला हुआ है। भांड़ में जावे देश, समाज। निजी के अलावे कोई दर्द नहीं। प्रीत भी नहीं अपनी – पराई नकल। विदेशों की नकल। वहाँ भीतरी अशांति, धार्मिक अशांति, मारकाट। वे हमारी तरफ आ रहे हैं। हम बाहरी अशांति के शिकार उनकी तरफ जा रहे हैं। समाधान का पता नहीं चलता। बौद्धिक, कवि, लेखक कमरों में, पत्रिकाओं में बहस करते रहें। जो इनका उत्पाद है – सामान्य जन के पल्ले नहीं पड़ता। वह दिशाहीन है। किसी के पास न अपना मानसिक खाद्य है न शांति। शिक्षा सूचनधर्मी है। शिक्षा का एक ही अर्थ रह गया – उपयोगितावाद कायम रहे।

यब सब अचानक नहीं। पहले से घटित ओर उपार्जित है। सामान्य जन अपने दुर्दिन, संघर्षों का जीवन जीते रहे हैं। जीवन और मूल्यों की एकात्मता के शास्त्र लिखे जाते रहे हैं। यही जड़ता है। इसके खिलाफ आर्थिक, सामाजिक आंदोलन तो हुए – कोई परिणाम सामने नहीं है। जड़ता का समाधान हमेशा सास्कृतिक आंदोलन हैं जो घटित नहीं हो पा रहे हैं। आजादी का आंदोलन राजनीतिक था। उससे कुछ त्याग, निर्भीकता के मूल्य निकले पर उनका पालन नहीं हुआ। राजसत्ता पर काबिज लोगों ने ही उनका अनुपालन नहीं किया। क्योंकि मानसिकता सामंती, औपनिवेशिक थी। अब इस सूची में पूंजीवाद जुड़ गया हैं। समाजवादी खुद को मानने वाले देश भी अब पूंजीवदी हैं – तकनीक के हवाले हैं। सामान्य श्रमिक या उसके उत्पाद को पूछने वाला कोई नहीं है।

तो, सवाल शुरूआत करने का है। अपने या समाज के अन्तर्विरोधों के खिलाफ आंदोलन का नाम सांस्कृतिक आंदोलन है। यही वास्तविक संघर्ष की आंच में तपानेवाला आंदोलन होता है, हमने खुद अपने, परिवेश, आस पास के अन्तर्विरोधों को कभी ध्वनित, फ्लैश नहीं किया। बगल का मुख्या, नेता लूट रहा है, हम चुप हैं। पिता घूस के पैसे से सब्जी ला रहा है – बेटा, बेटी चुप है, सिपाही जी खुलेआम सड़क की बुढ़िया से टिप ले रहे हैं। मास्टरजी टांग पसारे हैं स्कूलों में। डाक्टर साहब निजी प्रैक्टिस में हैं। हम चुप हैं। इंजीनियर साहब महल पिटवा रहे हैं।

स्थापित व्यवस्था, उसकी सरकार के खिलाफ छिटफुट उभार को हम सामाजिक अशांति, अन्तर्विद्रोह कह रहे हैं। आंदोलन इससे भिन्न होता है। वह भी सांस्कृतिक। वह हमेशा अन्तर्विरोधों को खत्म करने के लिए होता है। यहीं साफ स्थापित है कि सांस्कृतिक आंदोलन नहीं है तो सामाजिक अशांति और इमरजेन्सी है। अपराधधर्मिता को खुलकर खेलने का मौका मिला हुआ है। गवाही लाओ तो दंड मिलेगा। औपनिवेशिक यही कानून है। गवाही के लिए कोई तैयार नहीं है। मार दिया जायेगा। जो भी सच बोलेगा – मार दिया जायेगा।

अंतिम रूप से यहीं गाँधी याद आते हैं। भयमुक्त होना होगा। गाँधी बनकर कूदना होगा। डरना नहीं होगा कि हम किसी अन्तर्विरोध को उजागर करेंगे तो असुरक्षा पैदा होगी। शिव कुमार को यू० पी० सरकार ने पदमुक्त कर दिया। कहा कि कानूनी लड़ाई में पाठक स्कूल से अनुपस्थित रहे। मूल्यों के लिए लड़ाई का यही हश्र होगा पर एक गाँधी तो पैदा हुआ।

दिन भर छोटे स्कूलों में सरकार अपने यहाँ भोजन बनवा रही है। समानता के नाम पर पोशाक मिल रहे हैं – पोशाक बच्चे–बच्चियों को। गति के लिए साइकिल। विचारों, संस्कारों की पढ़ाई गायब। गैर सरकारी स्कूलों में नौकरी पाने लायक सूचनाओं की शिक्षा। नये मालिक वहाँ तैयार हो रहे हैं। घनिकों के बच्चे world class स्कूलों में मालिक बनेंगे। मध्यवर्ग कम्प्यूटर लेकर हांफता भागता हुआ। परिवार के लिए भी समय नहीं। सब कुछ औपचारिक। सरकारी स्कूलों के बच्चे अन्ततः नौकर। इसी से अशांत पीढ़ियाँ जनम रही हैं। भीड़ें जुटाई जा रही हैं रैलियों में। भीड़ सबकुछ तय कर रही है। तय करती है सांस्कृतिक आवाज उठानेवाली संगठित जनता। यहीं बातें रूकी पड़ी हैं। मोबाईल नं० ही आदमी का नंबर है इसे ही साधा जा रहा है।

(श्रीराम तिवारी हिंदी के वरिष्ठ लेखक एवं कवि हैं। इनकी चार कविताओं का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। अस्सी साल की आयु में भी जन चेतना विकास के क्षेत्र में काफी सक्रिय है। वे जनवरी 1996 ई० में बिहार प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्त हुए थे)

भारत की वर्तमान शासन व्यवस्था में समाजवाद असंभव

भारत के ऊपर आर्थिक संकट, मुक्त अर्थव्यवस्था के पक्षधरों का नीति निर्धारण में वर्चस्व और अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठनों के दबाव में भारत ने समाजवादी अर्थव्यवस्था को अलविदा कह दिया। तथाकथित आर्थिक सुधारों के नाम पर हमारे देश की अर्थव्यवस्था को वैश्विक व्यापार और राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय निजी कम्पनियों के लिए सुलभ और उदार बना दिया गया। इस नयी आर्थिक नीति के लागू होने के आरंभिक वर्षों में तो कई लाभ दृष्टिगोचर हुए यथा देश का तत्कालीन आर्थिक संकट टल गया, आर्थिक वृद्धि दर में स्पष्ट बढ़ोतरी हुई, इत्यादि। आज इस नीति को लागू हुए बीस वर्षों से ऊपर हो रहा है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में समाजवाद की मूल भावना सुप्रतिष्ठित है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'', ''वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाने रे'' इत्यादि भारतीय आदर्शों में भारतीय जीवन में समाजवाद की भावना ही अभिव्यक्त है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जो स्वतंत्रता संग्राम में भारत का अग्रणी राजनीतिक दल रहा है, भी भारत में समाजवादी व्यवस्था का सैद्धांतिक रूप में पक्षधर रहा है। श्री जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में कांग्रेस के अन्तर्गत एक समाजवाद विचार मंच भी था जिसमें समाजवादी विचारधारा पर चर्चा होती रहती थी। 1952 में हुए भारतीय गणतंत्र के प्रथम चुनाव में जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में गठित समाजवादी दल एक अलग राजनीतिक दल के रूप में चुनाव मैदान में उतरा था लेकिन उसकी अप्रत्याशित असफलता के फलस्वरूप जय प्रकाश नारायण का दलगत राजनीति से ही मोहभंग हो गया और उन्होंने इससे एक तरह से संन्यास ही ले लिया। भारत के बहुत से दिग्गज नेता समाजवादी विचार धारा के प्रखर समर्थक रहे हैं यथा डॉ० राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव आदि। इसके बाद, देश के राजनीतिक क्षितिज पर समाजवाद के नाम पर या समाजवादी विचार धारा में तथाकथित रूप से आस्था रखने वाले बहुत से दल उभरे हैं। लेकिन समाजवादी विचारधारा का कोई वजूद उनकी सत्ता केन्द्रित राजनीति में नहीं है। आज की राजनीति में हर राजनीतिक दल इतनी सत्ता प्रेरित और सत्ता केन्द्रित हो गयी है कि उसके लिये राजनीतिक सिद्धांत या नीति अर्थहीन हो गए हैं।

भारतीय स्वतंत्रता और गणतंत्रता के बाद बहुत वर्षों तक भारत के राजनीतिक क्षितिज पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक ऐसा चमकता सितारा रहा है जिसके सामने भारत के अन्य राजनीतिक दल काफी धुंधले रहे। कांग्रेस भारतीय समाज को समाजवादी ढाँचा पर ढालने के लिए प्रतिबद्ध थी। बाद के वर्षों में तो भारत को एक ''प्रभुत्वसम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य'' के बदले एक ''प्रभुत्वसम्पन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य'' की बात हमारे संविधान की प्रस्तावना में, जो संविधान की आत्मा है, शामिल कर ली गयी। देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनायी गई जिसमें बड़े उद्योग–धंधे सरकार के अधीन संचालित थे और अपेक्षाकृत छोटे उद्योग धंधों पर भी कई रूपों में सरकारी नियंत्रण थे। इस समाजवादी ढ़ाँचे में प्रायः 40 वर्षों तक संचालित होने के क्रम में हमारी अर्थव्यवस्था में बहुत सी विकृतियां आ गईं और उजागर होने लगीं। ऊपर से नीचे तक हमारी अर्थव्यवस्था भ्रष्टाचार के मकड़जाल में ग्रस्त हो गई। सरकारी नियंत्रण

मे ंचलने वाले सभी उद्यम, उद्योग और व्यापार घाटे में चलने लगे ओर सरकार पर आर्थिक बोझ बन गए। नब्बे के दशक में एक तरह से देश में आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। अंतर्राष्ट्रीय बाजार और व्यापार में भारत की साख काफी कम हो गयी। इस स्थिति के लिए कौन या क्या दोषी है ओर कैसे इससे निस्तार या त्राण मिलेगा, हर स्तर पर – स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय – इस पर चर्चा होने लगी और विचार मंथन होने लगा। मुक्त अर्थव्यवस्था के हिमायती और दक्षिण पंथी विचारधारा के लोगों ने भारत की तथाकथित समाजवादी अर्थव्यवस्था को इस संकटपूर्ण स्थित के लिए जिम्मेदार ठहराया। इसी विचारधारा के लोग तत्कालीन सरकार में भी थे। भारत के ऊपर आर्थिक संकट, मुक्त अर्थव्यवस्था के पक्षधरों का नीति निर्धारण में वर्चस्व और अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठनों के दबाव में भारत ने समाजवादी अर्थव्यवस्था को अलविदा कह दिया। तथाकथित आर्थिक सुधारों के नाम पर हमारे देश की अर्थव्यवस्था को वैश्विक व्यापार और राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय निजी कम्पनियों के लिए सुलभ और उदार बना दिया गया। इस नयी आर्थिक नीति के लागू होने के आरंभिक वर्षों में तो कई लाभ दृष्टिगोचर हुए यथा देश का तत्कालीन आर्थिक संकट टल गया, आर्थिक वृद्धि दर में स्पष्ट बढ़ोतरी हुई, इत्यादि। आज इस नीति को लागू हुए बीस वर्षों से ऊपर हो रहा है। देश की आज जो सामान्य और आर्थिक स्थिति है, उसकी संक्षेपतः निम्नलिखित तस्वीर हैः (1) देश में निचले तबके में गरीबी बढ़ी है और गरीब बढ़े हैं, (2) देश में अमीरी और गरीबी के बीच की खाई बहत चौड़ी हुई है, (3) हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का परिमाण और दायरा दोनों बढ़ा है, (4) विदेशी वस्तुओं की सुलभता

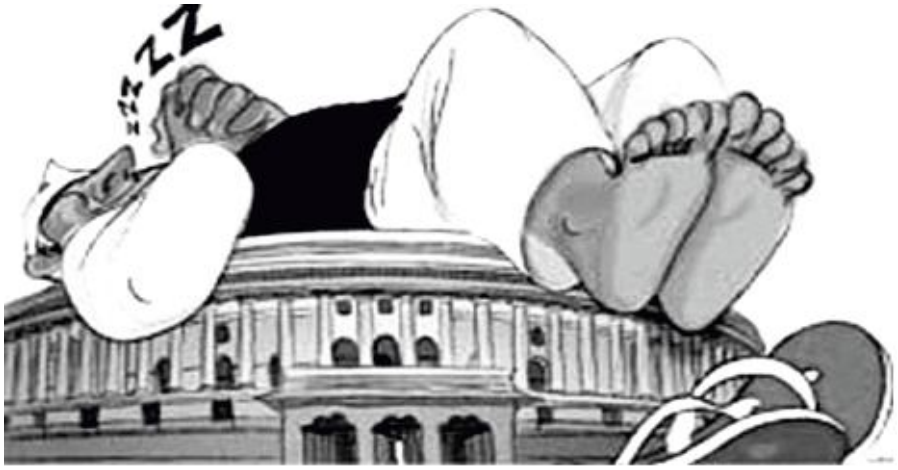

के साथ देश में अपसंस्कृति की बेतहाशा वृद्धि हुई है और हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन स्पष्ट रूप से हुआ है, (5) बहुत से ऐसे क्षेत्र जो पूँजीवादी व्यवस्था वाले अन्य देशों में भी सरकारी क्षेत्र में है, भारत में निजी क्षेत्र में जोरदार ढंग से आ गए है यथा शिक्षा और स्वास्थ्य। जहाँ अमेरिका में 90% बच्चे सरकारी विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं, भारत में ज्यादा से ज्यादा बच्चे निजी क्षेत्र के खर्चीले विद्यालयें में जाने को बाध्य हो रहे हैं। जहाँ ब्रिटेन और कनाडा जेसे पूँजीवादी देशों में स्वास्थ्य जैसी आवश्यक सेवा सराकारी क्षेत्र में है, भारत में उपलब्ध सरकारी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाएं इतनी अपर्याप्त और असंतोषजनक गुणवत्ता वाली हैं कि लोग असहनीय खर्च पर भी निजी क्षेत्र की महँगी स्वास्थ्य सेवाएं लेने को बाध्य हो रहे हैं। वास्तव में बहुत से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वाले देश भारत से, जिसके संविधान में ही देश की समाजवादी व्यवस्था प्रावधानित है, कहीं ज्यादा समाजवादी हैं। यक्ष प्रश्न है कि जब समाजवादी अर्थव्यवस्था में देश आर्थिक रूप से संकटग्रस्त हो गया और भ्रष्टाचार जैसी विकृति जोर–शोर से आ गयी और तथाकथित आर्थिक सुधारों वाली व्यवस्था में देश बदहाल है तो देश के उद्धार का रास्ता क्या है? देश की एक व्यवस्था जो दोनो स्थितियों में – समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थिति और तथाकथित आर्थिक सुधारों वाली अर्थव्यवस्था की स्थिति – समान रूप से कायम थी और है, वह है देश की शासन व्यवस्था। यह शासन व्यवस्था मूलतः वही है जो गुलाम भारत की औपनिवेशिक शासन व्यवस्था थी। इस औपनिवेशिक शासन व्यवस्था का उद्देश्य था देश का शोषण और यहाँ के निवासियों का नैतिक अधोपतन सुनिश्चित करना। हमने अपने संविधान में हमारे स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के प्रदेशन की अनदेखी करते हुए तात्त्विक रूप से इसी शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था को, जो गुलाम भारत में थी, स्वतंत्र भारत के लिए भी अपना लिया। ऐसी शासन व्यवस्था में न तो समाजवादी अर्थव्यवस्था का सफलतापूर्वक चलना संभव है और न उदारवादी अर्थव्यवस्था देश के लिए घातक परिणामों को लाए बिना काम कर सकती है। देश की समस्याओं और विकृतियों की जड़ में है यह शासन व्यवस्था जिसमें कोई भी आर्थिक व्यवस्था– समाजवादी या उदारवादी – सफल नहीं हो सकती। निदान है शासन व्यवस्था परिवर्त्तन जो जनता की करूण पुकार है।

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन अभियान की वैचारिक रूपरेखा

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान की वैचारिक रूपरेखा देश की वर्त्तमान स्थिति, समस्याएं और विकृतियां, उनका ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विश्लेषण, उस पर आधारित निदान, उसे जमीन पर उतारने की मार्गदर्शिका और निदानित भारत के स्वरूप की भविष्य दृष्टि पर आधारित है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

1. **देश की वर्त्तमान स्थिति, समस्याओं और विकृतियों पर विहंगम दृष्टिः**
   - (i) देश की राजनीति में नैतिकता का घोर पतन
   - (ii) सरकार और जनजीवन में भ्रष्टाचार
   - (iii) भारतीय समाज में व्याप्त गरीबी और गरीब–अमीर की बढ़ती खाई
   - (iv) बढ़ती हुई सामाजिक अशांति, अलगाववाद और अंतर्विद्रोह
2. **देश की वर्त्तमान स्थिति, समस्याओं और विकृतियों का ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विश्लेषणः**
   - (i) हालांकि देश की कुछ विकृतियां स्वतंत्रता के पहले औपनिवेशिक शासनकाल में भी थी, यथा गरीबी और भ्रष्टाचार, उपर्युक्त सभी समस्याएं और विकृतियां देश की स्वतंत्रता और गणतंत्रता के बाद से तीव्रता और व्यापकता दोनों रूप से बढ़ती गई हैं, चाहे जो भी दल सत्ता में रहा हो, या जो भी नेता सरकार के मुखिया रहे हों और चाहे उनसे निबटने के लिए जो भी कानून बनाए गए हों। सभी समयावधियों–स्वतंत्रता पूर्व, स्वतंत्रता के बाद और गणतंत्रता के बाद–में एक बात जो अविछिन्न और मूलरूप से सदा वर्त्तमान रही वह थी देश की शासनव्यवस्था जिसकी मुख्य विशेषता है कि राजकीय शक्ति ऊपर से नीचे प्रवाहित होती है।
   - (ii) महात्मा गाँधी जब दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रवास के बाद भारत लौटे, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने के पहले वे देश के विभिन्न भागों और विशेषतया गाँवों में घूमे, भारत की दयनीय स्थिति से रूबरू हुए और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उस देश, जो पहले आत्म निर्भर और खुशहाल था, को इस दयनीय स्थिति में लाने में औपनिवेशिक शासकों द्वारा भारत पर थोपी गई शासन व्यवस्था जिम्मेवार है। अतः इस शासन व्यवस्था को हटाना और इसके स्थान पर एक ऐसी विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था स्थापित करना जिसमें हर गाँव की अपनी स्वायत्त सरकार हो यानी ग्राम गणतंत्र हो, उनके नेतृत्व में संचालित स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य हो गया। उनकी दृष्टि में इसके लिए देश की राजनीतिक स्वतंत्रता एक आवश्यक शर्त थी, लक्ष्य नहीं।
   - (iii) राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने के लिए भारत के संविधान निर्माण में महात्मा गांधी और उनके विचार को सर्वथा गौण कर दिया गया। तत्कालीन परिस्थितियों और कुछ वर्गों के निहित स्वार्थों के षड़यंत्र और दुर्योग से संविधान की प्रस्तावना में जनता की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को तो बखूबी व्यक्त किया गया लेकिन उन्हें जमीन पर उतारने के लिए मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना ली गयी जो औपनिवेशिक भारत में थी।
   - (iv) गणतंत्र भारत की छः दशकों से अधिक यात्रा के बाद भारत की वर्त्तमान स्थिति निस्संदेह रूप से सिद्ध करती है कि वर्त्तमान शासन व्यवस्था लोगों की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को पूरा करने में सर्वथा अनुपयुक्त और अक्षम है।

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन अभियान

परिवर्त्तन क्यों अनिवार्य है?

भारत का वर्त्तमान परिदृश्य अत्यन्त ही दुःखद है। राजनीति जिस पर देश की दशा और दिशा संवारने का दायित्व है पूरी तरह सत्ता–केन्द्रित और फलतः सिद्धांतविहीन हो गयी है। सरकार और सम्बद्ध संस्थाओं में भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक फैला हुआ है; कुछ ढंग की शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी आवश्यक सेवाएं आम जनता की पहुँच से बाहर है; सामाजिक अशांति सर्वत्र व्याप्त है; आए दिन विभिन्न समूहों द्वारा आयोजित हड़ताल, बंद और रैलियों से जनजीवन त्रस्त है; अखबार के पन्ने लूट, हत्या, बलात्कार और अन्य जघन्य आपराधिक घटनाओं से भरे रहते हैं जिससे लगता है कि भारतीय समाज नैतिकता विहीन हो गया है और शासन मूक दर्शक, असहाय या न्यून है; देश का अच्छा खासा भाग अन्तर्विद्रोह की आग में झुलस रहा है; गाँवों में कृषि की स्थिति दयनीय है और अन्य उद्योग धन्धे नहीं के बराबर हैं; रोजगार की मृगमरीचिका में गाँवों से शहरों की ओर पलायन अबाध गति से हो रहा है; गाँव उजड़ रहे हैं और शहर में झुग्गी झोपड़ियों में अमानवीय जीवन जीने को लोग अभिशप्त हैं; देश में बढ़ती आबादी के साथ बेरोजगारों की फौज बेलगाम बढ़ रही हैं; नवउदारवादी अर्थव्यवस्था में मध्यम वर्ग की बेहतरी के साथ निम्नवर्ग का विशाल जन समुदाय गरीबी के दलदल में और गहरा धंसता जा रहा है और गरीबी और अमीरी की खाई इतनी चौड़ती होती जा रही है कि स्पष्टतः भारत के दो विरोधभासी रूप हो गए हैं। भारत की इन सब समस्याओं और विकृतियों का यदि तात्त्विक विश्लेषण किया जाय तो हम पाएंगे कि इन सब की जड़ में यहाँ की शासन व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अन्दर हम इन से जूझने का जितने भी प्रयास करें – प्रशासनिक, कानूनी, नीतिगत या और किसी विधि से, हमारा प्रयास असफल ही रहेगा। पिछले छः दशकों से ज्यादा का हमारा यही अनुभव रहा है और भविष्य में इससे इतर होने की कोई संभावना नहीं है।

सरकार और सम्बद्ध संस्थाओं में भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक फैला हुआ है; कुछ ढंग की शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी आवश्यक सेवाएं आम जनता की पहुँच से बाहर है; सामाजिक अशांति सर्वत्र व्याप्त है; आए दिन विभिन्न समूहों द्वारा आयोजित हड़ताल, बंद और रैलियों से जनजीवन त्रस्त है; अखबार के पन्ने लूट, हत्या, बलात्कार और अन्य जघन्य आपराधिक घटनाओं से भरे रहते हैं जिससे लगता है कि भारतीय समाज नैतिकता विहीन हो गया है और शासन मूक दर्शक, असहाय या न्यून है; देश का अच्छा खासा भाग अन्तर्विद्रोह की आग में झुलस रहा है;

इस बात को समझने के लिए भारत के इतिहास, विशेषतया इसके औपनिवेशिक काल, स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्र भारत के इतिहास पर गौर करना आवश्यक है।

अपने 5000 वर्षों के इतिहास में भारत औपनिवेशिक शासन के पहले तक न सिर्फ सभ्यता के शीर्ष पर रहा है बल्कि समृद्धि के शीर्ष पर भी या उसके आस पास रहा है। मुगल शासन के अन्त तक सत्रहवीं शताब्दी में भारत दुनिया की छठी अर्थव्यवस्था थी और इसके पास वैश्विक धन का प्रायः 25% धन था। 1757 ई० में प्लासी के युद्ध के बाद व्यापार के उद्देश्य से आई ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी, जो उस देश के व्यापारियों और उद्योगपतियों द्वारा ब्रिटिश सरकार की सहमति से

बनाई गई थी, ने भारत पर अपना राज स्थापित कर लिया। हजारों वर्षों के भारत के इतिहास में बाहर से आए व्यक्तियों या समूहों द्वारा स्थापित यह पहला राज था जिसके शासक यहाँ रहने–बसने के लिए नहीं, बल्कि अपने देश के लोगों की समृद्धि के लिए एक संसाधन सम्पन्न और समृद्ध देश को लम्बे समय तक लूटते रहने के लिए आए थे। बेहतर संगठन और सैन्य शक्ति की बदौलत स्थापित कंपनी राज की छत्रछाया में इनके व्यापारिक और अन्य तरीकों और तिकड़मों से भारत प्रायः सौ सालों तक लुटता रहा और दरिद्र होता गया। लेकिन कंपनी राज के लूट–खसोट के कृत्यों ने यहाँ के निवासियों और राजे–रजवाड़ों में असंतोष और विद्रोह की भावना को जन्म दिया और उन लोगों ने इनसे मुक्ति पाने के लिए 1857ई० में संग्राम छेड़ दिया। लेकिन आपसी वैमनस्य और एकजुटता के अभाव तथा कंपनी राज की बेहतर सांगठनिक और सैन्य शक्ति के कारण यह संग्राम असफल रहा और विद्रोह दबा दिया गया। लेकिन इस विद्रोह से ब्रिटेन में यह संदेश अवश्य गया कि कंपनी राज की इस तरह की खुल्लम खुल्ला लूट–खसोट की व्यवस्था भारत में दीर्घकालिक नहीं हो सकती। इस विद्रोह के पहले से ही कंपनी के कुकृत्यों के समाचार ब्रिटेन में आते रहते थे और ब्रिटिश सरकार कंपनी राज को हटाकर भारत को अपने एक उपनिवेश की हैसियत से सीधे ब्रिटिश सरकार के मातहत लाने की संभावना पर विचार कर रही थी। इसी उद्देश्य से भारत और भारतीयों को समझने के लिए ब्रिटिश संसद ने अपने एक सांसद लॉर्ड मैकॉले को 1833 ई० में भारत भेजा था। 1857 ई० के विद्रोह के मद्देनजर ब्रिटिश संसद ने एक कानून पारित कर भारत का शासन सीधे ब्रिटिश सरकार के अधीन कर दिया और

इस तरह भारत में 1858 ई० में ब्रिटिश राज स्थापित हो गया। भारत ब्रिटेन का एक उपनिवेश था जिसके प्राकृतिक और मानव संसाधानों का शोषण ब्रिटेन की बेहतरी के लिए किया जाना था। सात समुंदर पार बसे भारत का यह शोषण शांतिपूर्ण और व्यवस्थित ढंग से होता रहे, इसे सुनिश्चत करने के लिए ब्रिटेन ने भारत में एक ऐसी **शासन व्यवस्था** कायम की जिसकी निम्नलिखित विशिष्टताएं थी, **(i)** यह भारत के सर्वांगीण शोषण में निपुण हो, या यों कहे, यह एक निपुण व्यवस्थित लूटतंत्र हो, **(ii)** इस लूटतंत्र में भारतीयों की सहभागिता और सहयोग अनिवार्य था। इसे सुनिश्चित करने के लिए भारतीयों का नैतिक अधोपतन आवश्यक था। भ्रष्टाचार इस व्यवस्था का अभिन्न अंग था जिससे शासन व्यवस्था में न सिर्फ इसमें शामिल व्यक्तियों का बल्कि इससे जुड़े हर व्यक्तियों और समुदायों का नैतिक पतन सुनिश्चित हो गया जिससे भारतीयों को भारत के लोगों को ही व्यवस्थागत माध्यम से लूटने में कोई हिचक या मानसिक व्यवधाान न हो। **(iii)** इस शोषण या व्यवस्थित लूट के माध्यम से लूट का अंतिम और बड़ा लाभुक ब्रिटेन था और इसका एक अंश सहयोगी और इससे जुड़े भारतीयों को मिलता था। यह मुख्य लाभ और लाभांश भारत के विशाल जनसमुदाय, विशेषतया गाँवों में रहने वाले भारतवासियों के निर्मम शोषण या खून चूसने से आता था। दारिद्रीकरण और भुखमरी इस शासन व्यवस्था की पहचान और परिणति हो गयी। **(iv)** 'बाँटो और राज करो', इस शासन व्यवस्था की अनिवार्य रणनीति रही है। सदियो से शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में रहने वाले और एक साझी संस्कृति को जन्म देने वाले हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के दुश्मन बन बैठे। **(v)** इस शासन व्यवस्था में आम जनता शासित और निःसहाय शोषित होने की भावना से ग्रस्त थी जिससे विद्रोह की चिनगारी निकलती है। इसी भावना ने हमारे स्वतंत्रता संग्राम को जन्म दिया।

1915 ई० में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जब महात्मा गाँधी का अवतरण हुआ तो उनकी दिव्यदृष्टि में उन्हें यह स्पष्ट था कि भारत की दुर्दशा और बदहाली ऐसी शासन व्यवस्था के चलते है, व्यक्तिगत या समुदाय रूप से अंग्रेजों से नहीं। उनकी दृष्टि में ऐसी शासन व्यवस्था से मुक्त कराना ही भारत के स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य था, अंग्रेज चाहे भारत में रहें या जायें। इस बात को उन्होंने अनेकों अवसरों पर दुहराया था और इसी बात पर उन्होंने भारत की जनता को इस स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ा था और इसे जन संग्राम बनाया था। महात्मा गाँधी के अहिंसक असहयोग के अमोघ अस्त्र से भारत को जब 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता

मिली तो इस संग्राम के महानायक की दृष्टि में यह सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता थी, एक पड़ाव था और औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से भारत को मुक्त करने के लिए एक आवश्यक शर्त थी। हम अपने संविधान के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम के लक्ष्य को, जो कि इस शासन व्यवस्था से मुक्ति थी, पाने में सक्षम हो गए थे। लेकिन निर्वतमान ब्रिटिश सरकार की कुचाल, भारत के उन वर्गों का सहयोग जो औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के लाभुक थे, महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायियों में भी उनके आदर्शों और दृष्टि में अपूर्ण आस्था और तत्कालीन भारत की विषम परिस्थितियों के चलते हम अपने संविधान में उसी शासन व्यवस्था को कायम रखने की एक ऐतिहासिक भूल कर बैठे। स्वतंत्र भारत में भी औपनिवेशिक भारत की शासन व्यवस्था अपना लेना न सिर्फ स्वतंत्रता संग्राम के महानायक के प्रति विश्वासघात है बल्कि उस संग्राम के लक्ष्य को दरकिनार कर उस संग्राम को ही नकार दिया गया। इससे न सिर्फ स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों और बलिदानियों को ठगा सा महसूस करने दिया गया बल्कि करोड़ों भारतीयों के सपनों पर पानी फिर गया।

इस औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की पूर्व वर्णित विशिष्टताओं के आलोक में यदि भारत की सभी समस्याओं ओर विकृतियों, यथा शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार, देश में बढ़ती गरीबी ओर गरीब–अमीर की खाई, सामाजिक अशांति ओर अन्तर्विद्रोह, राजनीति का सिद्धांत विहीन और नैतिकता विहीन होना इत्यादि का विश्लेषण किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि इनकी जड़ में यहाँ की शासन व्यवस्था है। वास्तव में स्वतंत्र भारत में ये समस्याएं और विकृतियां औपनिवेशिक भारत से ज्यादा ही विकराल हुई हैं। भ्रष्टाचार की मात्रा और व्यापकता दोनों बढ़ी हैं, पहले जहाँ सत्ता केन्द्रित राजनीति ने भारत के समरस समाज को धर्म के नाम पर विभाजित किया, आज की राजनीति जाति और अन्य आधारों पर भी इसे बाँट रही है। देश सामाजिक अशांति और अन्तर्विद्रोह से ग्रस्त और त्रस्त है, स्वतंत्र भारत में गरीबी का दंश लगातार बढ़ ही रहा है जो हम बेरोजगारों की बढ़ती फौज से सहज अनुमान लगा सकते हैं, स्वतंत्र भारत के शासन में भी जनता अपने को उसी तरह निस्सहाय महसूस करती है, जैसा गुलाम भारत में था, भले ही वोट बैंक ओर बयानों की राजनीति में भारत को विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र होने का ढंढोरा पीटा जाता हो।

विकराल से विकरालतर होती देश की इन समस्याओं ओर विकृतियों का हम शासन व्यवस्था को बदले बिना कभी भी निदान नहीं कर सकते। पिछले छः से ज्यादा दशकों की भारतीय गणतंत्र की यात्रा का यही अनुभव है, देश के नेता बदले, केन्द्र और राज्यों में सरकारें बदलीं, सत्ता में आईं पार्टियों बदलीं, लेकिन एक चीज जो नहीं बदली, वह है देश की शासन व्यवस्था। आज हम महात्मा गाँधी को फिर याद करें जब उन्होंने कहा था, ''देश की दुर्दशा और बदहाली अंग्रजों से नहीं, उनके द्वारा भारत पर थोपी गई शासन व्यवस्था के चलते है और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य इसी शासन व्यवस्था से मुक्ति है''। देश की आज यह करूण पुकार है कि हम गुलामी की इस व्यवस्था को हटाएं और इसकी जगह वह व्यवस्था लाएं जिसकी कल्पना स्वतंत्र भारत के लिए महात्मा गाँधी न की थी और जो सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक देश जैसे अमेरिका में सफलतापूर्वक चल रही है।

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान इसी लक्ष्य को समर्पित है और आपके सहयोग का आह्वान करता है।

भारत के हर नागरिक से अपील

- भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन के अभियान को आप समझें
- इसके लिए आप राष्ट्रीय कायाकल्प, भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन मंच के वेबसाइट और ब्लॉग का इस्तेमाल कर सकते हैं।
- संस्था का सदस्य बनकर इसके विभिन्न कार्यों में सहयोग करें।
- आर्थिक सहयोग कर राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में सहयोग करें।

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन मंच

173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001

टेलीफोनः 0612–2541276, ईमेल rashtriyakayakalp@gmail.com

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की मार्गदर्शिका

शासन व्यवस्था परिवर्त्तन के विचार को परिमार्जित, परिष्कृत तथा प्रचार–प्रसार करना है। यह अभी भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन विचार मंच के तहत कार्यशील है। इसमें यथोचित प्रगति होने पर इसके दूसरे चरण, जिसमें एक राजनीतिक दल का गठन और उसके तहत चुनावी कार्यक्रम का संचालन किया जाना है, को प्रारंभ किया जायेगा। इस चरण में इस अभियान के विचारों को जन जन तक, विशेषतया मतदाताओं तक पहुँचाना है और उन्हें इसके लिए जागरूक, शिक्षित और अभिप्रेरित करना है।

भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था भारतीय संविधान में निरूपित है। यह शासन व्यवस्था मूलतः वही है जो औपनिवेशिक भारत में थी। 26 जनवरी 1950 से लागू भारतीय संविधान का 75 से 80% वही है जो ब्रिटिश संसद द्वारा पारित Government of India Act 1935 में था। यह Act एक तरह से औपनिवेशिक भारत का संविधान था जिसके तहत भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व भारत का शोषणात्मक शासन संचालित होता था। अतः परिवर्त्तित या नयी शासन व्यवस्था को देश में स्थापित करने के लिए भारतीय संविधान में पुरानी शासन व्यवस्था को हटाकर उसकी जगह नयी शासन व्यवस्था को प्रतिस्थापित करना होगा। इसके लिए संवैधानिक रास्ता है संविधान का व्यापक संशोधन करना। हमारे संविधान निर्माताओं ने यह महसूस किया था कि बदली हुई परिस्थितियों और नए अनुभव के आलोक में देश तदनुसार संविधान संशोधन की अनिवार्यता से रूबरू होगा। इसलिए हमारे संविधान का संशोधन अपेक्षाकृत सरल रखा गया है। इसके लिए अभीष्ट संविधान संशोधन बिल को संसद के दोनों सदनों से उनके निर्धारित सदस्य संख्या के सामान्य बहुमत या उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित करना आवश्यक है। अतः एक ऐसे राजनीतिक दल, जो भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन के लिए प्रतिबद्ध हो, का भारी बहुमत से संसद में आना आवश्यक है। अभी देश में जितने राजनीतिक दल हैं, यह प्रतिबद्धता तो दूर, शासन व्यवस्था परिवर्त्तन का यह विचार भी उनकी सोच, सिद्धांत, नीति और कार्यक्रम के बिल्कुल बाहर है। शायद यह भी संभव हो कि जिस शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की हम बात करते हैं वह उनके या उनके सदस्यों के निहित हितों के विपरीत हो। अतः अभी की स्थिति में यह अनिवार्य है कि शासन व्यवस्था परिवर्त्तन के लिए समर्पित और प्रतिबद्ध एक नया राजनीतिक दल अस्तित्व में आए। भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान के तहत एक ऐसे दल का गठन प्रस्तावित है।

इस अभियान के दो चरण हैं – एक वैचारिक चरण जिसके अंतर्गत शासन व्यवस्था परिवर्त्तन के विचार को परिमार्जित, परिष्कृत तथा प्रचार–प्रसार करना है। यह अभी भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन विचार मंच के तहत कार्यशील है। इसमें यथोचित प्रगति

होने पर इसके दूसरे चरण, जिसमें एक राजनीतिक दल का गठन और उसके तहत चुनावी कार्यक्रम का संचालन किया जाना है, को प्रारंभ किया जायेगा। इस चरण में इस अभियान के विचारों को जन जन तक, विशेषतया मतदाताओं तक पहुँचाना है और उन्हें इसके लिए जागरूक, शिक्षित और अभिप्रेरित करना है। कई ऐतिहासिक अवसरों पर भारत की जनता द्वारा दिखायी गयी राजनीतिक सूझबूझ और समझदारी के मद्देनजर भारतीय जन मानस द्वारा इस विचार की ग्राहयता और मान्यता सुनिश्चित है। इस विचार को प्रभावी ढंग से उन तक पहुँचाना चुनौती है।

एक अभियान के तहत और एक कार्यक्रम के साथ देश के मानस पटल पर इस विचार को लाना और कार्यरूप में उसे उसकी परिणति तक पहुँचाना एक क्रांतिकारी कदम है जिसकी वकालत महात्मा गाँधी ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक की थी। यह विचार उतना ही क्रांतिकारी है जितना सदियों की गुलामी से जकड़े भारत को अहिंसक असहयोग के अनोखे अस्त्र से राजनीतिक स्वतंत्रता दिलाना। हमें स्वतत्रता संग्राम के उस महानायक को फिर याद करना है कि इस संग्राम का लक्ष्य था गुलाम देश की शासन व्यवस्था का परिवर्त्तन, मात्र सत्ता परिवर्त्तन नहीं, उसी व्यवस्था के मातहत अंग्रेजों की जगह भारतीयों का काबिज होना नहीं। इस अभियान के तहत इसे कार्यरूप में लाने के लिए उपर्युक्त मार्गदर्शिका के आधार पर कार्यक्रम संयोजित और संचालित किया जा रहा है।

आपके सहयोग का आह्वान है।

भारत के दुःखद परिदृश्य का सिर्फ निराश दर्शक नहीं बनें।

नव-सामन्तवाद बनाम भ्रष्टाचार

प्रो. संतोष कुमार

भारत का इतिहास अनेकों विरोधाभासों से भरा पड़ा है तथा अधिकांश समय में यहाँ सामन्तवाद प्रभावी रहा है तथा 1947 के पहले लगभग दो सौ वर्षों तक यह ब्रिटेन का उपनिवेश रहा। सामंती प्रथा आमतौर पर संवेदनहीन होती है और मनुष्य–मनुष्य के बीच बराबरी में विश्वास नहीं रखती। साम्यवाद और समाजवाद के उदय के बाद यद्यपि विश्व राजनीति उपनिवेशवाद से तो मुक्त हो गया, परन्तु विश्व की सबसे बड़ी शक्तियों ने आर्थिक उपनिवेशवाद की नई प्रथा आरंभ कर दी। फलस्वरूप पूरे संसार में 'कारपोरेट' जगत का वर्चस्व स्थापित होने लगा है। इसी के साथ साम्यवाद–समाजवाद का अवसान भी नजर आने लगा है।

क्योंकि हमने अपने देश की शासन व्यवस्था को उपनिवेश की शासन व्यवस्था के अनुरूप ही रखा, इससे भ्रष्ट व्यवस्था को बल ही मिला। तथाकथित लोकतंत्र ने एक नये वर्ग को जन्म दिया, जिसे हम नव–सामन्ती वर्ग कह सकते हैं। लगभग सभी सांसद, विधायक, प्रशासक, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर तथा अन्य सरकारी कर्मचारी सामंती आचरण से ग्रस्त हो गये। अधिक से अधिक धन संचय की प्रवृत्ति ने भ्रष्टाचार में नये आयाम जोड़ दिये हैं।

समस्या गंभीर है, हमारे सामने है और हम प्रतिदिन इसे झेलते हैं। इससे मुक्ति पाने के लिए हम अँधेरे में हाथ–पैर मार रहे हैं। अधिकांश लोग अब निराश हो चुके हैं। भ्रष्टाचार के साथ जीना अपनी नियति मान चुके हैं।

परन्तु मेरे जैसा आशावादी, भ्रष्टाचार को शाश्वत सत्य नहीं मानता। मैं यह भी नहीं मानता कि जब तक हमारा नैतिक उत्थान नहीं होगा– भ्रष्टाचार दूर नहीं होगा। मेरी आशावादिता का कारण है कि भ्रष्टाचार से प्रभावित लोग अधिसंख्यक है। दुर्भाग्यवश यह सत्ता से दूर है।

इसीलिए मेरा मानना है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो और सत्ता एक सीधे पिरामिड जैसी हो न कि उल्टे पिरामिड जैसी। परन्तु यक्ष–प्रश्न है कि आज के सत्ताधारी नव–सामन्त क्या ऐसा होने देगा? मेरी समझ है कि जब उन आंदोलनों का उभार होगा यह नव–सामंती छिपते नजर आयेंगे। उसी समय जन–गण–मन भारत का भाग्य विधाता बनेगा।

आपके 'राष्ट्रीय कायाकल्प' के माध्यम से चलाया गया अभियान सराहनीय है और सामयिक भी। मेरी शुभकामनाएँ, समर्थन एवं बधाई।

पूर्व–प्रोफेसर, बी०सी०ई० (पटना विश्वविद्यालय)
विश्व बैंक प्रोजेक्ट में सलाहकार

प्रश्नोत्तर के माध्यम से

शासन व्यवस्था परिवर्तन के इस

अभियान को समझना

(गतांक से आगे...)

प्र०18 परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में भारत के गाँवों में स्वायत्त सरकारें या ग्राम गणतंत्र की स्थापना करनी होगी। भारत की वर्त्तमान स्थिति में जहाँ गाँवों की साक्षरता तथा शैक्षणिक स्तर नीचा है, क्या गाँवों में स्वायत्त और पूर्ण रूप में विकसित सरकारें संचालनीय होंगी?

उ० हमें यह समझना है कि स्वायत्त ग्राम सरकार का अर्थ है कि उस गाँव के वयस्क निवासियों द्वारा उस सरकार के एक निर्दिष्ट संख्या के निर्णय कर्त्ता निर्वाचित किए जाएंगे। ये निर्णय कर्त्ता अनिवार्य रूप से उसी गाँव के निवासी होंगे। उस निकाय के निर्णय कर्त्ताओं के द्वारा लिये गए निर्णयों को यथा आवश्यक संख्या के प्रशासकों, पेशेवरों और अन्य अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित किया जायेगा। ये प्रशासक, पेशेवर और अन्य अधिकारी यथोचित शिक्षा, अनुभव तथा उस कार्य के सम्पादन के लिए अन्य आवश्यक योग्यता प्राप्त व्यक्ति होंगें जिनका उसी गाँव का निवासी होना अनिवार्य नहीं होगा। अच्छे निर्णय कर्त्ता हाने के लिए औपचारिक शिक्षा का होना अनिवार्य नहीं है। राजतंत्रीय शासन व्यवस्था में भारत में ही ऐसे बहुत से उदाहरण है जहां एक अनपढ़ राजा शासन कार्यों में एक अनुकरणीय निर्णय कर्त्ता सिद्ध हुआ है, जैसा कि मुगल सम्राट अकबर।

अंग्रेजी शासक सुदूर भारत पर अपने औपनिवेशिक शासन को उचित सिद्ध करने के लिए इसी तरह का तर्क देते थे। उनका कहना था कि चूंकि भारत के लोग अशिक्षित, पिछड़े और अन्धविश्वासी हैं, अतः इन पर शासन करना ''गोरे लोगों का भार'' है।

प्र०19 क्या यह वांछनीय नहीं होगा कि प्रारंभ में शासन व्यवस्था परिवर्त्तन एक छोटे और प्रबंध में आसान स्तर जैसे कि एक गाँव या एक प्रखंड या एक जिला के स्तर पर किया जाय और फिर उस अनुभव का लाभ लेते हुए शासन व्यवस्था परिवर्त्तन बड़े स्तर पर किया जाय यथा एक राज्य और फिर पूरे देश में।

उ० साधारणतया, और विशेष कर सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक संदर्भ में, एक छोटे स्तर पर इस उद्देश्य से किया हुआ प्रयोग कि इसके परिणाम और अनुभव के आधार पर ही बड़े स्तर पर इसे उतारा जाएगा, की रणनीति सर्वथा अनुपयुक्त और कम से कम निरूत्साहक और निराशाजनक होगी। इस मामले में कोई छोटा स्तर, बड़े स्तर या पूर्ण इकाई से इतने अभिन्न या जटिल रूप से जुड़ा हुआ है कि छोटे स्तर पर प्रयोग के लिए समुचित स्थिति लाई ही नहीं जा सकती। छोटे स्तर की स्थितियां बड़े स्तर की स्थितियों से अप्रभावित रह ही नहीं सकती। स्थानीय स्तर या किसी और छोटे स्तर का शासन राज्य या केन्द्र की शासन व्यवस्था से अभिन्न रूप से जुड़ा है। अतः शासन व्यवस्था का परिवर्तन सम्पूर्ण इकाई पर ही किया जा सकता है, न कि उसके एक भाग पर।

प्र०20 चूँकि इस अभियान का उद्देश्य राष्ट्र की शासन व्यवस्था में एक मौलिक परिवर्त्तन लाना है, जिससे बहुत सी चिरपरिचित संस्थाएं, आदतें और व्यवहार अस्त–व्यस्त हो जाएंगे, क्या यह वांछनीय नहीं होगा कि यह परिवर्त्तन धीरे–धीरे, या विभिन्न चरणों में या क्रमिक सुधारों द्वारा लाया जाय?

उ० जिन संस्थाओं से हम रूबरू होते हैं, या जो हमारी आदतें बन जाती है या जिन व्यवहारों में हम लिप्त होते हैं, वे सब उस आधारभूत शासन व्यवस्था से बनती हैं। शासन व्यवस्था परिवर्त्तन निस्सन्देह उनको बदल देगा या प्रभावित करेगा। इस परिवर्त्तन और प्रभाव को लाने में किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं है, और न ही किसी में यह शक्ति होगी कि वह इस बदलाव या प्रभाव को रोक सके या इनकी गति को कम कर सके। हमें सिर्फ यही सोचना है कि यह शासन व्यवस्था परिवर्त्तन लाया जाय या नहीं। भारत की जनता को संस्थाओं, आदतों और व्यवहारों में परिवर्त्तनों के अनुरूप अपने को अनुकूलित करने की असाधारण क्षमता और लचीलापन है। इतिहास के बहुत से अवसरों पर भारत की जनता ने इसे प्रमाणित कर दिखाया है, जैसे अपने देश के ही राजाओं के बदले एक विदेशी औपनिवेशिक शक्ति का राज्य, या फिर एक लोकतांत्रिक गणतंत्र के स्थापित होने पर, चाहे वह गणतंत्र अधूरा ही क्यों न हो। अतः हमें यह समझना होगा कि (1) भारत में शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अनिवार्य और अपरिहार्य हे, (2) इस परिवर्त्तन से उन

संस्थाओं, आदतों और व्यवहारों जिनके हम जानकार और अभ्यस्त हो चुके है, में बदलाव अवश्यसंभावी है, (3) हम इन बदलाओं में अपने को अनुकूलित करने की सराहनीय क्षमता रखते हैं, (4) अतः इस कारण से भारत में शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की दिशा या गति में किसी बदलाव की कोई आवश्यकता नहीं है और हमें इसकी चिंता अनावश्यक है।

प्र०21 जब तथाकथित प्रगतिशील प्रस्तावों, यथा ''विधायिकाओं में महिला आरक्षण विधेयक'' या ''लोकपाल विधेयक'' को कार्यान्वित करने में वर्षों नहीं दशकों तक लग रहे हैं तो भारत जैसे एक विशाल देश की शासन व्यवस्था परिवर्त्तन करने में तो असाधारण रूप से लम्बी अवधि लग सकती है। इस बीच राष्ट्र को आक्रांत करने वाली भीषण समस्याएं यथा 'भ्रष्टाचार' या 'माओवाद' और भी विकराल होती चली जाएंगी, जिससे जनजीवन और भी बुरी तरह प्रभावित होता रहेगा। इस संदर्भ में राष्ट्र के लिए क्या यह वांछनीय नहीं होगा कि वह इन समस्याओं की ओर ज्यादा ध्यान दे और उनका प्रभावकारी निदान करे, न कि शासन व्यवसथा परिवर्त्तन जैसे अस्पष्ट या कम से कम लम्बा समय लगने वाले प्रयास में अपने को उलझाए?

उ० भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन के इस अभियान को पूरी और अच्छी तरह समझने के लिए निम्नलिखित बातों को आश्वस्त होकर ध्यान में रखना आवश्यक है। (1) पहली बात, सभी बुराइयां और समस्याएं जिनसे देश आक्रांत है, वे एक स्वतंत्र देश के लिए अपनायी गई वह औपनिवेशिक शासन व्यवस्था है जो उसके शोषण और लोगों के नैतिक पतन के लिए बनाई और लाई गयी थी; पिछले साठ सालों की भारतीय गणतंत्र की यात्रा का अनुभव है कि ये बुराइयां और समस्याएं बद से बदतर ही होती गयी हैं और किसी भी प्रशासनिक या विधिक उपायों से, चाहे वे कितना भी कठोर क्यों न हो, उनका निदान नहीं हो सकता। (2) दूसरी बात, यदि वर्त्तमान शासन व्यवस्था को बदल कर वह शासन व्यवस्था लाई जाती है जिसकी गांधीजी ने स्वतंत्र भारत के लिए मरते दम तक जोरदार सिफारिश और वकालत की थी और जो एक वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक अमेरिका जैसे देश में क्रियाशील है, तो भ्रष्टाचार, 'माओवाद' और देश की अन्य समस्याएं पनप ही नहीं और सर ही नहीं उठा सकती। (4) तीसरी बात, भारत में यह शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अहिंसक, संवैधानिक तथा लोकतांत्रिक ढंग से किया जा सकता है और यह कुछ ही वर्षों में देश में आम चुनाव के माध्यम से हो सकता है। इसके लिए जनता को इस अभियान के प्रति जागरूक करने, परिवर्त्तन के औचित्य और अपरिहार्यता में शिक्षित करने और उन्हें इसके लिए भारत के नागरिक की भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। आज के युग में जहाँ सूचना और संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांतिकारी विकास हुआ है, यह काम अपेक्षाकृत बहुत ही आसानी से किया जा सकता है। यह ठीक है कि इसके लिए एक अनुशासित और कार्य कुशल संगठन तथा पर्याप्त आर्थिक और अन्य संसाधन आवश्यक है। राष्ट्र के इतने महत्त्वपूर्ण मिशन के लिए ये चीजें करने के लिए हम लोग निस्संदेह सक्षम हैं।

पाठकों से

''राष्ट्रीय कायाकल्प'' में प्रतिपादित विश्लेषणों, विचारों और कार्यक्रमों के संबंध में आपके विचारों, सुझावों और प्रतिक्रियाओं का हम स्वागत करेंगे। इसके लिए आप हमसे निम्नलिखित रूप में संपर्क स्थापित कर सकते हैं :

1. संपादक के नाम पत्र से : पता – डा. टी. प्रसाद, 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना– 800001
2. ईमेल से : पता– rashtriyakayakalp@gmail.com
3. टेलीफोनः 0612–2541276 (कार्यालय) , 0612–2541885 (आवास)
4. मोबाइल : 09431815755
5. वेबसाइट : www.fcsgi.org इस वेबसाइट पर आप भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच, जिसका मुखपत्र राष्ट्रीय कायाकल्प है , के बारे में पूरी जानकारी हासिल कर सकते हैं।

(नोट : डाक अथवा ईमेल से प्राप्त आपके पत्रों को पूर्ण/संक्षिप्त/संशोधित रूप में हम अपनी सुविधा के अनुसार राष्ट्रीय कायाकल्प के आने वाले अंक में यथा आवश्यक अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित करेंगे।)

समर शेष है

– राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर

ढीली करो धनुष की डोरी, तरकस का कस खोलो,
किसने कहा, युद्ध की वेला गयी, शान्ति से बोलो?
किसने कहा, और मत बेधो हृदय वह्नि के शर से,
भरो भुवन का अंग कुंकुम से, कुसुम से, केसर से?
कुंकुम? लेपूँ किसे? सुनाऊँ किसको कोमल गान?
तड़प रहा आँखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान।

फूलों की रंगीन लहर पर ओ उतरानेवाले!
ओ रेशमी नगर के वासी! ओ छवि के मतवाले!
सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है,
दिल्ली में रौशनी, शेष भारत में अँधियाला है।
मखमल के पर्दों के बाहर, फूलों के उस पार,
ज्यों का त्यों है खड़ा आज भी मरघट–सा संसार।

वह संसार जहाँ पर पहुँची अब तक नहीं किरण है,
जहाँ क्षितिज है शून्य, अभी तक अम्बर तिमिर–वरण है।
देख जहाँ का दृश्य आज भी अन्तस्तल हिलता है,
माँ को लज्जा–वसन और शिशु को न क्षीर मिलता है।
पूछ रहा है जहाँ चकित हो जन–जन देख अकाज,
सात वर्ष हो गये, राह में अटका कहाँ स्वराज?

अटका कहाँ स्वराज? बोल दिल्ली! तू क्या कहती है
तू रानी बन गयी, वेदना जनता क्यों सहती है
सबके भाग दबा रक्खे हैं किसने अपने कर में
उतरी थी जो विभा, हुई वन्दिनी, बता, किस घर में
समर शेष है, यह प्रकाश बन्दी–गृह से छूटेगा,
और नहीं तो तुझ पर पापिनि! महावज्र टूटेगा।

समर शेष है, इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा।
जिसका है यह न्यास, उसे सत्वर पहुँचाना होगा।
धारा के मग में अनेक पर्वत जो खड़े हुए है,
गंगा का पथ रोक इन्द्र के गज हो अड़े हुए हैं,
कह दो उनसे, झुके अगर तो जग में यश पायेंगे,
अड़े रहे तो ऐरावत पत्तों–से बह जायेंगे।

समर शेष है, जनगंगा को खुल कर लहराने दो,
शिखरों को डूबने और मुकुटों को बह जाने दो।
पथरीली, ऊँची जमीन है तो उसको तोड़ेंगे।
समतल पीटे बिना समर की भूमि नहीं छोड़ेंगे।
समर शेष है, चलो ज्योतियों के बरसाते तीर,
खण्ड–खण्ड हो गिरे विषमता की काली जंजीर।

समर शेष है, अभी मनुज–भक्षी हुंकार रहे हैं।
गाँधी का पी रूधिर, जवाहर पर फुंकार रहे है।
समर शेष है, अहंकार इनका हरना बाकी है,
वृक को दन्तहीन, अहि को निर्विष करना बाकी है।
समर शेष है, शपथ धर्म की, लाना है वह काल,
विचरें अभय देश में गाँधी और जवाहर लाल।

तिमिरपुत्र ये दस्यु कहीं कोई दुष्काण्ड रचें ना!
सावधान, हो खड़ी देश भर में गाँधी की सेना।
बलि देकर भी बली! स्नेह का यह मृदु व्रत साधो रे!
मन्दिर औ' 'मस्जिद, दोनों पर एक तार बाँधो रे!
समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा 1953 ई० में रचित यह कविता उनके कविता–संग्रह 'परशुराम की प्रतीक्षा' से उद्धृत है। भारत की स्वतंत्रता के सात वर्षों बाद लिखी इस कवित में कवि ने अपनी वेदना और हताशा व्यक्त की है कि भारत के गाँवों में, जहाँ भारत की आत्मा बसती है, अभी भी आजादी की किरण नहीं प्रस्फुटित हुई है, ओर अभी भी सदियों की गुलामी का अंधेरापन इन गाँवों में पसरा हुआ है। जब कि स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी ने बार बार उद्घोषणा की थी कि गाँवों के इस अंधेरेपन को दूर करना ही स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य है। कवि को लगता है कि भारत की स्वतंत्रता दिल्ली में ही आकर वहाँ कैद हो गई है। आजादी के साठ से अधिक वर्षों बाद आज के संदर्भ में देखें और समीक्षा करें तो पाएंगे कि इन गाँवों की स्थिति अभी भी तात्त्विक रूप से वहीं है जिसका मार्मिक वर्णन इस कविता में किया गया है। भारत की स्वतंत्रता को दिल्ली की कैद से मुक्त कर भारत के गाँवों में आजादी की रोशनी फैलाना है। इसलिए भारतवासियो, 'समर शेष है' आज भी प्रासंगिक ही नहीं त्वरित महत्त्व का है।

Reg. No. : BIHHIN/2013/62162

भारत माँ अभी भी जंजीरों में

''सदियों से गुलामी की जंजीर में जकड़ी भारत माँ 1947 में इन जंजीरों से मुक्त नहीं हुई। ब्रिटिश संसद से पारित भारतीय स्वतंत्रता का कानून 1947 के तहत सत्ता हस्तांतरण कर अंग्रेजों ने सिर्फ इस जंजीर में लगे हुए ताले की चाभी भारतीयों के हाथों में सौंप दी। इस चाभी से ताला खोलकर भारत माँ को इन जंजीरों से मुक्त करने के बजाय 1950 के 26 जनवरी को इस ताले को बदल कर नया ताला लगा कर मुक्ति का सिर्फ अहसास कर लिया गया। वह जंजीर बदस्तूर कायम रही। बल्कि समय के साथ इन जंजीरों में जंग लगने से जकड़ के साथ और विकृतियाँ उत्पन्न हो रही है। हमें भारत माँ को वास्तव में इन जंजीरों से मुक्त कराना है, जिससे भारत माँ के शरीर में रक्त का संचार ठीक से हो सके, विभिन्न रोगों से छुटकारा मिले और अंग प्रत्यंग पुष्ट हो। भारत में आधी-अधूरी और फलतः विकृत स्वतंत्रता के स्थान पर पूर्ण और स्वस्थ स्वतंत्रता का आविर्भाव करना है। जन-गण की संप्रभुता को संविधान के पन्नों से निःसृत होकर जन जीवन में लाना है। और इस सब के लिए शासन व्यवस्था में तदनुरूप परिवर्त्तन लाना अनिवार्य है।''

वातायन
0612-2222920